भारतीय संस्कृति के मूलाधार

॥ वेद ॥

बाबा सत्यनारायण मौर्य

वेद केवल मानवता की ही नहीं
सम्पूर्ण प्रकृति की अमूल्य धरोहर हैं।

दुनियॉ भर में विभिन्न व्यक्तियों द्वारा अनेक मत, मजहब, संप्रदाय या रिलीजन्स चलाये गये। इस्लाम, ईसाइयत, शिंतो, पारसी, यहूदी आदि ऐसे हर मजहब में अपने अपने पवित्र ग्रंथ प्रचलित हैं। उनकी मान्यता है कि ये ग्रंथ ईश्वर ने उनके प्रवर्तकों को दिये। स्वयं को ईश्वर का सच्चा प्रतिनिधि मानने वाले इन प्रवर्तकों ने यह भी कहा कि उनके द्वारा परमात्मा से प्राप्त यही ज्ञान अंतिम सत्य है।
इसके बाद परमात्मा दुनियॉ में कोई नया ज्ञान नहीं भेजेगा।

समय के साथ विज्ञान की कसौटी पर आसमानी ग्रंथों की अनेक बातें असत्य सिद्ध होने लगी लेकिन इन ग्रंथों को मानने वालों ने सत्य स्वीकारने के बजाय उल्टे वैज्ञानिकों को उत्पीड़ित किया।
आज भी इन व्यक्तिनिर्मित आसमानी कहे जाने वाले ग्रंथों की सीखों ने पूरे विश्व को धर्मान्तरण, अंधविश्वास और आतंक की आग में झोंक रखा है। जिन धार्मिक ग्रंथों पर मानवता को महकाने की जिम्मेदारी थी उन्हीं कथित धर्मग्रंथों की छाया में पनपी कट्टर मजहबी सोच ने पूरे विश्व को नर्क बना रखा है।

ऐसे समय में आवश्यकता है सनातन वैदिक ग्रंथों से आम जनमानस को जोड़ने की जो किसी पंथ की नहीं...सम्पूर्ण मानवता की अमूल्य धरोहर हैं।

आइये इन्हें जानने का प्रयास करें।

हिन्दू ज्ञान परंपरा की दो धारायें प्रचलन में है।

।। आगम और निगम ।।

आगम लोक परम्परा से चली आ रही मान्यताओ, देवताओं,
तंत्र, पूजा, लोककथाओं आदि से संबंधित है।
इसके ग्रंथ आगम और पुराणो के नाम से जाने जाते हैं।
दूसरी ओर निगम जिसे वैदिक परम्परा के नाम से जाना जाता है।
इस धारा का मुख्य आधार वेद और अन्य वैदिक ग्रंथ हैं।

हिन्दू संस्कृति की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता ये है कि इन दोनों धाराओं में
सैद्धांतिक भिन्नता होते हुए भी एक दूसरे के प्रति विरोध नहीं है।
वरन ये एक दूसरे में इस तरह घुल-मिल गये है कि
उनमें कोई विभाजन रेखा नजर नहीं आती।

इन दोनो धाराओं के यज्ञ–हवन, पूजा परम्राओं आदि ने आपस में मिलकर
एक नया रूप ले लिया जो वर्तमान में हिन्दुत्व के नाम से दिखाई देता है।

|| वेद अर्थात ज्ञान ||

वेद शब्द 'विद' धातु से बना है, जिसका अर्थ है जानना।
वेदों को सृष्टि के संविधान के रूप में भी जाना जाता है। विराट प्रकृति का बहुरंगी स्वरूप, रहस्य, इसके संचालन के नियम तथा भौतिक और आध्यात्मिक ज्ञान जानने निकले जिज्ञासु ऋषियों ने परमात्मा की प्रेरणा से विभिन्न विषयों का जो ज्ञान अपने अंत:करण में अनुभव किया, उसे काव्य रूप में जगत को सौंप दिया।

आदिकाल से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक
यह ज्ञान मौखिक रूप से चलता आया।
इसीलिए इसे श्रुति भी कहा जाता है
जिसका अर्थ है कि जो सुना गया है।

ध्वनि विज्ञान के विद्वान ऋषियों को वैदिक मंत्रों से उत्पन्न होने वाले सूक्ष्म स्पंदनों का ज्ञान था। शायद इसीलिए लेखन की अपेक्षा मौखिक श्रुत परम्परा को महत्व दिया गया।

।। स्वतः प्रमाणित वेद ।।

वेदों के बारे में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि
अन्य ग्रंथों के लिये इन्हें प्रमाण माना जाता है,
परन्तु इनमें कही गई बात को किसी अन्य ग्रंथों से प्रमाणीकरण की
आवश्यकता नहीं है। ये स्वत: प्रमाणित माने जाते हैं।

**कहा जाता है कि जो बात प्रत्यक्ष और अनुमान से
नहीं जानी जावे, उसे वेद से जानो।**

वेदों में मानवता की समस्याओं पर सर्वांग चिंतन करके समग्र मार्गदर्शन दिया गया है।
मानव सभ्यता और संस्कृति को दृष्टि में रखकर
सभी मानवों के कर्तव्य और निषेधों का स्पष्ट उल्लेख किया गया है।
आध्यात्मिक,सामाजिक,आर्थिक, शैक्षणिक,धार्मिक और नैतिक आदि प्रत्येक विषय
पर वेदों में जो स्पष्ट विचार दिये गये हैं वे सदा से समाज द्वारा मान्य रहे हैं।

।। वेदों का प्राकट्य ।।

अन्ति सन्त न जहा स्यन्ति संत न पश्यति।
देवस्य पश्य काव्य न ममार न जीर्यति।।

वेद न कभी नष्ट होते है और न कभी जीर्ण होते हैं।
वेद ज्ञान सदा ही नवीन बना रहता है

वेद हिन्दू संस्कृति के सबसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं।
जिन्हें परमात्मा प्रणीत ज्ञान ग्रन्थ के रूप में माना जाता है।
इन देवकाव्य रूपी वेदों का न आदि है न अंत।

सृष्टि के साथ इनका प्रादुर्भाव होता है
तथा प्रलय के समय भी ये नष्ट नहीं होते केवल विलुप्त हो जाते हैं
और नवीन सृष्टि के समय ब्रह्मा जी के द्वारा पुनः प्रकट कर दिए जाते हैं।

।। अपौरुषेय वाक्यम् वेदः ।।
वेदों को मानव रचना नहीं माना जाता है

वेद अन्य ग्रंथों की तरह मानव के सामान्य मस्तिष्क रचना नहीं है।
वरन दिव्य चेतना से संपन्न ऋषियों की
ध्यान की उच्च अवस्था में प्राप्त परमात्मा प्रणीत ज्ञान है।

वैदिक ऋषियों का मानना था कि ज्ञान की जिन झलकियों के बारे में उन्होंने कहा है वे सर्वशक्तिमान द्वारा प्रेरित हैं, उनके द्वारा इस ज्ञान की केवल अभिव्यक्ति हुई है इसलिए उन्होंने इस ज्ञान को स्वयं की रचना न मानकर अपौरुषेय संज्ञा दी।

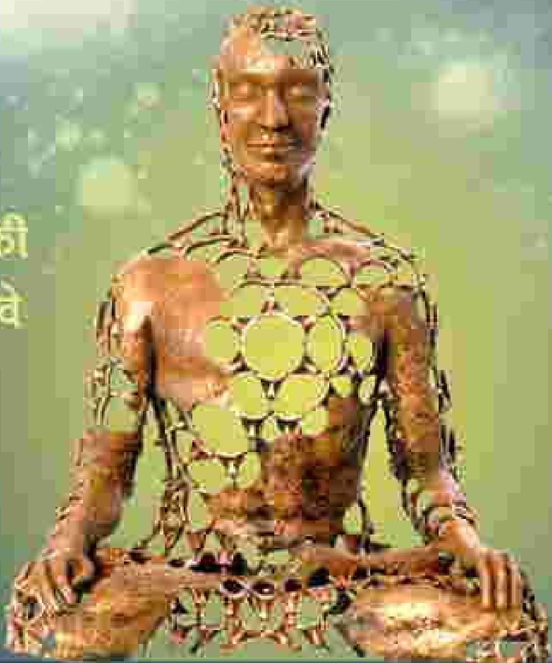

जैसा कि अधिकांश वैज्ञानिक खोजें प्रयोगशाला में कभी नहीं हुईं,
उन्हें किसी क्षण में अचानक जाना गया जैसा कि न्यूटन,
आर्किमिडीज़ आदि लोगों के साथ हुआ।
उच्च स्तरीय कविताओं का मूल विचार भी अपने मानवीय अहंकार से
उपर उठकर शून्य में जाने पर ही होता है।
इसी भावभूमि को अपौरुषेय स्थिति कहा जा सकता है।

।। मंत्रदृष्टा ऋषि ।।

जिन ऋषियो ने परा ज्ञान को वाणी के पश्यन्ती स्तर पर देखकर
बैखरी भाषा में व्यक्त किया, यानि मंत्रों की रचना की
उनके नाम मंत्रों के साथ सम्मानार्थ जोड़े गये है।
लेकिन इन्हें इन मंत्रों का कर्ता न कहकर
मंत्रदृष्टा कहा जाता है।

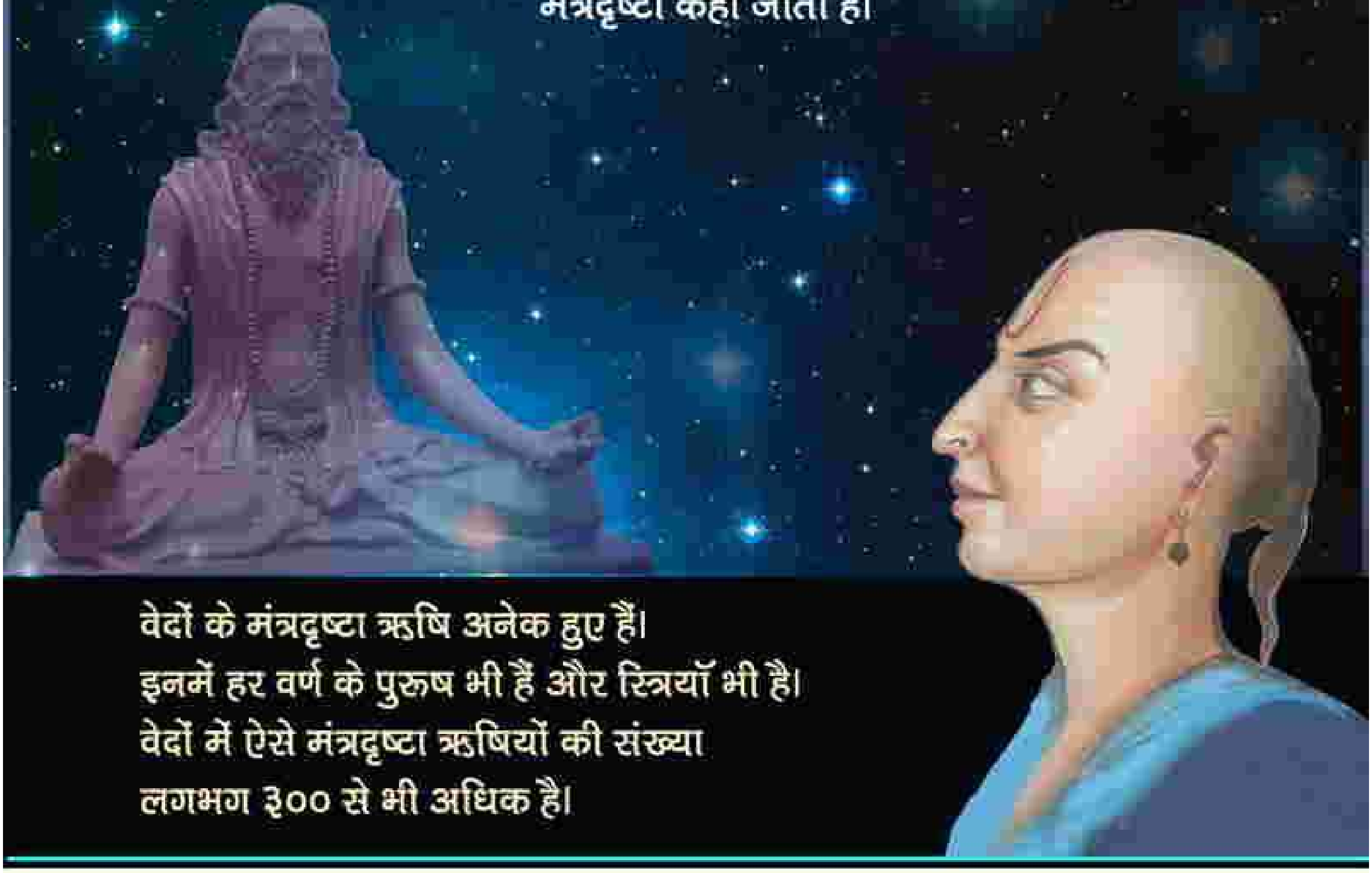

वेदों के मंत्रदृष्टा ऋषि अनेक हुए हैं।
इनमें हर वर्ण के पुरुष भी हैं और स्त्रियाँ भी है।
वेदों में ऐसे मंत्रदृष्टा ऋषियों की संख्या
लगभग ३०० से भी अधिक है।

इनमें से कुछ प्रमुख मंत्रदृष्टा है - भरद्वाज,अंगिरा, दीर्घतमस, वशिष्ठ, विश्वामित्र, अत्रि, भृगु, नारद,कश्यप, मनु, गृत्समद, वैवस्वत, शिवि, औशीनर, प्रतर्दन, मधुच्छन्दा, देवापि, मेधातिथि, शुन:शेप, कण्व, गौतम,कुलस्त,कुक्षीवान आदि।

प्रमुख महिला मंत्रदृष्टा ऋषिकायें -श्रद्धा, रोमशा, लोपामुद्रा, विश्ववारा, अपाला, घोषा, यमी, इन्द्राणी, उर्वशी, उषा, दिक्षिणा, सूर्या आदि।

चूंकि भारत में एक ही नाम के कई-कई व्यक्तित्व हुए हैं। व्यास, वशिष्ठ, विश्वामित्र, सूत जी, भरद्वाज आदि कई नाम व्यक्तिवाचक न होकर पद नाम या उपनाम है। इसलिये भ्रम पैदा होना स्वाभाविक है। लेकिन हमें यही स्वीकारना चाहिये कि नाम से ज्यादा महत्व उनके ज्ञान का है।

।। वाणी के चार रूप ।।

चत्वरी वाक् परिमिता पदनि तनि विदुर ब्राह्मण ये मनीषिन:।
गुहात्री निहिता नैयन्ति तुरेय: वचो मनुष्य वदन्ति।

ब्रह्मज्ञानी जानते हैं कि वाणी के चार रूपों में से तीन रूप गुप्त हैं।
चौथे बैखरी रूप को मानवों द्वारा बोलने में उपयोग किया जाता है।

वेदों के अनुसार वाणी या भाषा के चार रूप हैं।

परा, पश्यन्ति, मध्यमा और बैखरी

परा (योग और ध्यान प्रथाओं के माध्यम से प्राप्त भाषण का ओंकार रूप)

पश्यन्ति (परा अनुभव का निचला सचित्र रूप)

मध्यमा (चित्रात्मक और मौखिक संरचना के साथ विचार का अव्यक्त रूप)

बैखरी यानि भौतिक (ध्वन्यात्मक अभिव्यक्ति)

पानी के उदाहरण से देखा जाये तो बर्फ को बैखरी, तरल पानी मध्यमा,
भाप को पश्यन्ति रूप है और गैस को परा मानकर
'अव्यक्त परा से मूर्त रूप बैखरी' तक के वाणी के विभिन्न रूपों को जाना जा सकता है।

परा वैदिक ज्ञान को तत्ववेत्ता ऋषियों ने वाणी के पश्यन्ति भाषा के स्तर पर देखा,
जाना, अनुभव किया और उसे सरल बैखरी भाषा में मानवीय स्तर पर व्यक्त किया।

वेद और वेद व्यास जी

आमतौर पर महर्षि वेदव्यास को लोग वेद के रचयिता मानते हैं परन्तु यह समझ लेना अत्यंत आवश्यक है कि व्यास भारत की ज्ञान शोध और लेखन परम्परा से जुड़ा बड़ा समूह है जिसने देश भर में फैले वैदिक ज्ञान को संग्रहीत और व्यवस्थित किया।

वेद, पुराण आदि धार्मिक ग्रंथों के रचयिता की उपाधि के रूप मे व्यास शब्द का प्रयोग प्रोफेसर, आचार्य, कुलपति आदि की तरह सनातन परम्परा में होता आया है। कई बार इसके साथ नाम भी जोड़ दिया जाता है जैसे कृष्ण द्वैपायन व्यास, वादरायण व्यास आदि।

सनातन लेखकों की विशेषता रही है कि उन्होने ग्रंथ की विषय वस्तु के बारे में हर बात का विस्तार से वर्णन किया किन्तु स्वयं के बारे में कोई विशेष जानकारी नहीं दी।

आज भी धार्मिक प्रवचनकर्ताओं के बैठने के स्थान को व्यासपीठ कहा जाता है।
व्यास जी को सनातन संस्कृति में अमर माना जाता है।
जो ज्ञान के सनातन और अमर होने का प्रतीक है।

।। वेदों का रचनाकाल ।।

वेदों का रचनाकाल निश्चित करना कठिन है क्योंकि यह किसी एक व्यक्ति द्वारा किसी एक काल या स्थान में रचित रचना नही, अपितु सुदीर्घ काल में अलग-अलग स्थानों पर विकसित हुए ज्ञान के भंडार हैं।

फिर भी वेदों का रचना-काल उनमें वर्णित ग्रहों की तत्कालीन तथा आधुनिक स्थिति, एवं उनकी गति के आधार पर अलग-अलग निर्धारित किया गया है। लेकिन ये हजारों वर्ष प्राचीन है इसमें कोई संदेह नहीं।

।। वेदों के विभाग और उपवेद ।।

मूलतः 'वेद' एक ही ज्ञान–राशि है, जो शिष्य को पारंपरिक रूप से प्राप्त होती चली आई। अलग–अलग समय में विभिन्न ऋषियों द्वारा अनुभूत यह ज्ञान देश के विभिन्न स्थानों पर बिखारा हुआ था।

महर्षि वेद व्यास ने इस ज्ञान को संकलित करके इसे विषयानुसार चार भागों में विभाजित किया जिसे हम सामान्य लोगों की सुविधा के लिए चार वेदों के रूप में जानते हैं।

जैसे विज्ञान को अलग–अलग शाखाओं के नाम से अलग–अलग संज्ञा दी जाती है वैसे ही वेद की विशाल ज्ञान राशि को चार भागों में अलग–अलग नाम से जाना जाता है।

इन्ही वेदों में सूत्र रूप में वर्णित ज्ञान और विज्ञान पर विस्तार में रचे ग्रंथों को उपवेद के नाम से जाना जाता है। कहा जा सकता है कि उपवेद वेदज्ञान का ही विस्तार है।

|| ऋग्वेद ||

ऋच्यते स्तुयते नया इति ऋक्

ऋग्वेद के मन्त्रों को ऋचा कहते हैं।

ऋचा वे मंत्र हैं जिनके माध्यम से सर्वशक्तिमान परमात्मा
और देवताओं की आराधना की जाती है।

चारों वेदों में ऋग्वेद सबसे प्राचीन और आकार में सबसे बड़ा ग्रंथ है।
इसमें मुख्यतया परमात्मा तथा उनकी स्तुति के बारे में मंत्र है।
ऋषियों और देवताओं के आधार पर इसमें
१० मंडल, ८५ अध्याय, १०२८ सूक्त और १०५५२ मन्त्र हैं।

ऋग्वैदिक ऋचाओं द्वारा अनेक देवताओं की स्तुति की गई है।
प्रसिद्ध वैदिक सूक्तों में सर्वाधिक सूक्त
ऋग्वेद से ही प्राप्त होते हैं।
अधिकतर विद्वानों द्वारा इसी के ही
सर्वाधिक भाष्य किये गये है।

ऋग्वेद को वैविध्यपूर्ण वेदकालीन संस्कृति का दर्पण कहा जा सकता है। इसमें आर्यों की धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक, कलात्मक, मनोवैज्ञानिक और वैचारिक आदि विभिन्न पक्षों से सम्बद्ध प्रचुर सामग्री मिलती है। संक्षेप में कह सकते हैं कि यह वैदिक युग के बारे में सारी जानकारी देने वाला विश्वकोश है।

॥ यजुर्वेद ॥

यजुरुज्जते यज्ञ मंत्र, अयगीत नमेति यजुः,
जिसके माध्यम से यज्ञ में मंत्रोच्चारण किया जाता है।

यजुर्वेद के मंत्रों को 'यजु'(यजुष) कहते हैं।
यजुर्वेद यज्ञ में प्रयुक्त मंत्रों एवं यज्ञों को संपन्न कराने वाले
मंत्रों का कर्मकांड प्रधान ग्रंथ है।
इसमें पूजा, यज्ञ एवं देवताओं की आराधना करने के
महत्व एवं विधियों का वर्णन है।
ऋग्वेद एवं सामवेद के मंत्र पद्यात्मक हैं,
जबकि यजुर्वेद के अधिकांश मंत्र गद्यपरक हैं।

इसमें ४० अध्याय ३०३ अनुवाक और १९७५ कंडिका या मंत्र हैं।

इसकी दो प्रमुख शाखाएँ हैं।
शुक्ल यजुर्वेद - यह शुद्ध मन्त्र का अंग है।
कृष्ण यजुर्वेद - इसमें विनियोग वाक्यों का भी प्रयोग है।

शुक्ल यजुर्वेद उत्तर भारत में और कृष्ण यजुर्वेद दक्षिण भारत में अधिक प्रचलित है।

॥ सामवेद ॥

सामवेद परमात्मा की उपासना तथा संगीत गान का शास्त्र है।
यह यज्ञों के अवसर पर गाये जाने वाले १८७५ मंत्रों का संग्रह है।
जिनमें १७७१ मंत्र ऋग्वेद के हैं और स्वयं के मात्र १०४ मन्त्र हैं।
गायन सामवेद का सार है।

यजुर्वेद की भाँति इसे भी दो भागों में बाँटा गया है।
पूर्वारिक - इसमें ६ अध्याय और ६५० मन्त्र हैं।
उत्तरार्चिक- इसमें २१ अध्याय और १२२५ मंत्र हैं।

जिस प्रकार से ऋग्वेद के मंत्रों को ऋचा कहते हैं और यजुर्वेद के मंत्रों को यजूँषि कहते हैं उसी प्रकार सामवेद के मंत्रों को सामानि कहते हैं। ऋगवेद में साम या सामानि का वर्णन अनेक स्थानों पर आता है। चारों वेदों में सामवेद की सर्वाधिक शाखाऐं मिलती है।

सामवेद ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग की त्रिवेणी है।
इसके अंतर्गत वैदिकऋषियों ने विशिष्ट मंत्रों का संकलन करके गायन की पद्धति विकसित की। आधुनिक विद्वान् भी इस तथ्य को स्वीकार करने लगे हैं कि समस्त स्वर, ताल, लय, छंद, गति, मन्त्र, स्वर-चिकित्सा, राग, नृत्य, मुद्रा, भाव आदि सामवेद से ही निकले हैं।

।। अथर्ववेद ।।

यस्य राज्ञो जनपदे अथर्वा शान्तिपारगः।
निवसत्यपि तद्राराष्ट्रं वर्धतेनिरुपद्रवम।।

जिस राजा के राज्य में अथर्ववेद जानने वाला विद्वान् शान्तिस्थापन के कर्म में निरत रहता है,
वह राष्ट्र उपद्रवरहित होकर निरन्तर उन्नति करता जाता है।

अथर्व वेद को अथर्वांगिरस भी कहा जाता है
क्योंकि इसमें ऋषि अथर्वन और ऋषि अंगिरस द्वारा
रचित मंत्रों की संख्या सबसे अधिक हैं।

इसमें देव स्तुति के साथ विविध कर्मकाण्ड, यज्ञ सम्बन्धी मन्त्र, आयुर्वेद,
पोषण एवं नैतिक कार्यों आदि का भी ज्ञान समाहित है।
वेदों की प्रचलित शाखा के अनुसार इसका विभाजन इस प्रकार है-
७० काण्ड, ७३० सूक्त तथा ५८९७ मन्त्र

अथर्ववेद की भाषा और स्वरूप के आधार पर
ऐसा माना जाता है कि इस वेद की रचना सबसे बाद में हुई।
अथर्ववेद की ९ शाखाओं की जानकारी मिलती है
जिनमें से वर्तमान में दो शाखा ही उपलब्ध है

भूगोल, खगोल, वनस्पति विद्या, असंख्य जड़ी-बूटियाँ, आयुर्वेद, गंभीर से गंभीर रोगों
का निदान और उनकी चिकित्सा, अर्थशास्त्र के मौलिक सिद्धान्त, राजनीति के गुह्य
तत्त्व, राष्ट्रभूमि तथा राष्ट्रभाषा की महिमा, शल्यचिकित्सा, कृमियों से उत्पन्न होने वाले
रोगों का विवेचन, मृत्यु को दूर करने के उपाय, मोक्ष, प्रजनन-विज्ञान अदि
सैकड़ों लोकोपकारक विषयों का निरूपण अथर्ववेद में है।
आयुर्वेद की दृष्टि से अथर्ववेद का महत्व अत्यन्त सराहनीय है।
अथर्ववेद में 'दैहिक और दैविक' दोनों तरह के अनुष्ठान वर्णित हैं।

।। वेदों के चार भाग ।।

प्रत्येक वेद को चार भागों में विभाजित किया गया है।

मंत्र, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद

संहिता

संहिता नामक मंत्र भाग में विभिन्न देवी-देवताओं को संबोधित मंत्र शामिल हैं, जो एक विशेष ताल में कर्मकांड की प्रार्थना या आह्वान के दौरान बोले जाते हैं। मंत्र का हिस्सा ज्यादातर शब्दों के उच्चारण और उनके द्वारा आह्वान करने वालों के मन और उनके आसपास के भौतिक वातावरण में पैदा होने वाले कंपन से संबंधित है जिनसे दिव्य शक्तियों के अवतरण किया जा सके।

ब्राह्मण

ब्राह्मण भाग में संस्कारों और अनुष्ठानों के बारे में जानकारी होती है। इन्हे एक प्रकार से यज्ञ-अनुष्ठान आदि वैदिक कर्मकांडों का मार्गदर्शक ग्रंथ माना जा सकता है। इनका अध्ययन किया जाता है लेकिन मंत्र संहिताओं की तरह इनका पाठ नहीं किया जाता है।

आरण्यक

आरण्यक विभिन्न कर्मकांडों के अनुष्ठानों के बजाय उनकी आध्यात्मिक और दार्शनिक पृष्ठभूमि से संबंधित ग्रन्थ हैं।

उपनिषद

वेद के चौथे भाग को उपनिषद कहा जाता है। उपनिषद गहरे आध्यात्मिक ज्ञान की पुस्तकें हैं जिन्हें वेदांत के नाम से भी जाना जाता है।

।। ब्राह्मण ग्रंथ ।।

ब्राह्मण ग्रन्थ वैदिक मन्त्रों का अर्थ या आशय स्पष्ट करते हैं,
अर्थात् वे यज्ञ आदि विधान में कर्मकांड के तरीके समझाते हैं ।

संक्षेप में ब्राह्मण ग्रन्थ गद्य में वेदों की विस्तृत व्याख्या है।
इन विभिन्न ब्राह्मण ग्रन्थों में विभिन्न प्रकार के
यज्ञ आदि अनुष्ठान कब, कैसे और कहां करना है,
इसके बारे में विस्तार से बताया गया है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में व्याख्या के समय अनेक कथाएँ, आख्यान
और अन्य वर्णन मिलते हैं जिनका ऐतिहासिक महत्व है।

ब्राह्मण ग्रंथ अनेक हैं, उनमें से कुछ प्रमुख हैं -

ऐतरेय, शतपथ, तैत्तरीय, कौषीतकी, गौपथ, महातांड्य

|| आरण्यक ग्रंथ ||

वेदों का कर्मकांड सम्बंधित भाग जहां ब्राह्मण नाम से जाना जाता है
वहीं यज्ञों आदि का आध्यात्मिक महत्व और तत्व ज्ञान, पराज्ञान,
सृष्टि रचना के रहस्य या ब्रह्मचर्चा विषयक भाग आरण्यक कहलाता है।

नगरों से दूर अरण्य या गहरे जंगलों में पढ़ाए जाने के कारण
इस भाग को आरण्यक कहा जाता है।
अनेक उपनिषद वेदों के इसी ज्ञान भाग के अंग हैं।

अनेक आरण्यक ग्रन्थों में से कुछ प्रमुख ग्रंथ ये हैं-

एतरेय आरण्यक, तैतरीय आरण्यक, बृहद आरण्यक

|| उपनिषद ||

उपनिषद का सामान्य अर्थ सत्य के करीब बैठना है।

मरने के बाद क्या होता है? जीवन का मूल क्या है? शरीर में प्राण कैसे आते हैं और किस रास्ते से निकलते हैं? मोक्ष कैसे प्राप्त होता है? सृष्टि का निर्माण क्यों और कैसे हुआ है? इस प्रकार के विभिन्न प्रश्न मानव मन में सदा से उठते रहे हैं। उनके बारे में चिंतन और उनका समाधान उपनिषदों में विस्तार से वर्णित है।

उपनिषदों में यह ज्ञन विभिन्न माध्यमों और प्रणालियों जैसे प्रश्न, वाद-विवाद, व्याख्यात्मक विवरण, रूपकों और कहानियों के माध्यम से दिया गया है। अनेक उपनिषदों में से कुछ उपनिषद स्वतंत्र है तो इनमें से कुछ आरण्यक के अंग हैं। इन्हे वेद का अंतिम ज्ञान भाग यानि 'वेदान्त' भी कहा जाता है।

उपनिषदों की संख्या १०८ या उससे अधिक २२० तक मानी जाती है। लेकिन इनमें से ये ११ उपनिषद प्रमुख हैं

ईश, केन, कथा, मुंडक, माण्डूक्य, एतरेय, तैत्तिरीय, प्रश्न, श्वेताश्वतर, छांदोग्य और बृहदारण्यक।

।। उप वेद ।।

उप–वेद वेदों के सहायक विषयों पर निर्मित ग्रंथ हैं।
जिनका मूल वेदों में ही है पर विभिन्न ऋषियों ने इन विषयों का विस्तार किया।
वेदों के विषय अलग अलग होते हुए भी उनमे कोई स्पष्ट विभाजन रेखा नहीं है,
इसलिए 'कौन सा उपवेद किस वेद का उपवेद है?' इस विषय में मतान्तर है।
परन्तु इससे उनके महत्व में कोई अंतर नहीं पड़ता।

आम धारणा के अनुसार आयुर्वेद ऋग्वेद का, धनुर्वेद यजुर्वेद का, गंधर्ववेद सामवेद का और अर्थवेद अथर्ववेद का उपवेद है।

आयुर्वेद – धन्वंतरि ने इसे ऋग्वेद से इसे निकाला था।
धन्वंतरि के अलावा ऐतरेय, कश्यप, हरित, अग्नि वेश और भेदमुनि भी इसके प्रवर्तक रहे हैं।
आयुर्वेद स्वास्थ्य और चिकित्सा से संबंधित है। वर्तमान में आयुर्वेद की तीन महत्वपूर्ण पुस्तकें हैं–
चरक संहिता, सुश्रुत संहिता और वाग्भट्ट संहिता।

धनुर्वेद – विश्वामित्र ने इसे यजुर्वेद से निकाला था।
यह उपवेद शस्त्र विज्ञान, जैसे नागरिक और सैन्य रक्षा, युद्ध और राजनीति जैसे
भौतिक विज्ञानों की व्याख्या करता है। धनुर्वेद की बहुत प्राचीन पुस्तकें उपलब्ध नहीं हैं,
लेकिन कुछ ज्ञात पुस्तकों में धनुर्विद्या, द्रौण विद्या, कोदंड मंदना और धनुर्वेद संहिता हैं।

गन्धर्ववेद –भरतमुनि ने इसे सामवेद से निकाला था।
संगीतवेद सामवेद का उपवेद है जिसमें नृत्य, गीत तथा वाद्य के सिद्धांत एवं प्रयोग, ग्रहण तथा प्रदर्शन का
रोचक विवरण प्रस्तुत किया गया उन्होंने अपने 'नाट्यशास्त्र' में नाट्य के साथ संगीत का भी प्रामाणिक
वर्णन किया है। संगीत के अतिरिक्त यह उपवेद वास्तुऔर विभिन्न कलाओं से संबंधित भी है।

अर्थशास्त्र –अथर्ववेद का उपवेद है।
बृहस्पति, उशना, विशालक्ष, भरद्वाज, पराशर आदि इसके प्रधान आचार्य हैं।
यह राजनीति तथा दंडनीति, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्थाओं से संबंधित है।
कौटिल्य का अर्थशास्त्र भी बहुल प्रसिद्ध है। शिल्पशास्त्र की गणना भी इसी उपवेद के अंतर्गत की जाती है।
कुछ विद्वान स्थापत्य व वास्तु को अथर्व वेद का उपवेद स्वीकार करते हैं।

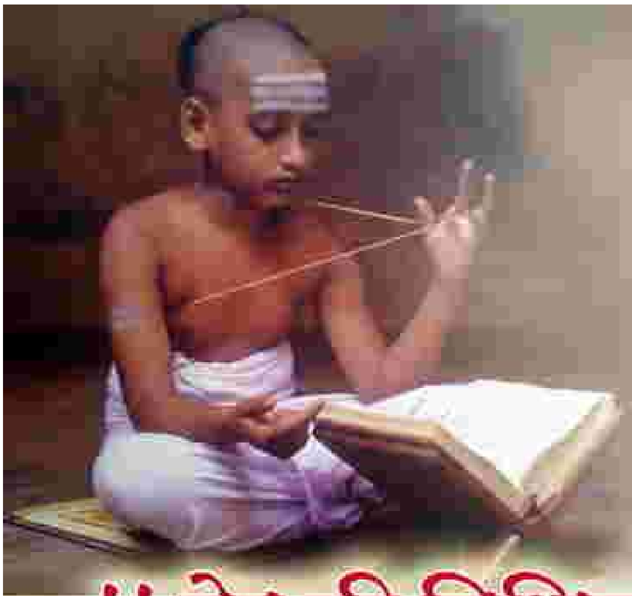

।। वेद की विभिन्न पाठ परम्परायें ।।

प्राचीनतम वेदों को उनके वास्तविक रूप में अब तक वेदपाठ के विभिन्न तरीकों से सहेज कर रखा गया है। ऋषियों ने वेदों का पाठ हमें परम्परागत तरीके से इतनी सटीकता और सहजता के साथ सौंपा है कि इनमें एक शब्द का बदलाव भी संभव नही, और न ही मिलावट की कोंई संभावना।

मंत्रों को याद करने के लिए वेदों के तीन प्राकृत पाठ और ८ विकृत पाठ प्रचलन में हैं।

प्रकृति पाठ 3 प्रकार के हैं- संहिता पाठ, पद पाठ और क्रम पाठ

१ संहिता पाठ –जिसमें मन्त्र अपने मूल रूप में उच्चारित होता है।

२ पद पाठ – वेदमंत्रों का सस्वर पाठ 'पदपाठ' कहा जाता है।

३ क्रम पाठ –दो शब्दों की संधि बनाते हुए क्रम से नया शब्द जोड़कर उच्चारण करना क्रमपाठ कहलाता हैं।

विकृतिपाठ- 8 प्रकार के हैं- 1. जटा, 2. माला, 3. शिखा, 4. रेखा, 5. ध्वज, 6. दण्ड, 7. रथ और 8. घन

ये वेदों को कंठस्थ करने के लिए विभिन्न प्रकार से मन्त्रों के उच्चारण के तरीके हैं।

वेदपाठ की इन पद्धतियों के महत्व को समझते हुए यूनेस्को ने ७ नवम्बर २००३ को वेदपाठ को मानवता के मौखिक एवं अमूर्त विरासत की श्रेष्ठ कृति घोषित किया था।

।। वेदों की विविध पाठ पद्धतियों की झलक ।।

मंत्रों को बोलने की विविध प्राकृत और विकृत पाठ पद्धतियाँ है।
जैसे यजुर्वेद के एक मंत्र की पंक्ति है
तेन त्यक्तेन भुंजीथा । मा गृधः कस्य स्विद् धनम् ।

इस पंक्ति के संहिता प्राकृत के नियम

संहिता पाठ – तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः । 'बोलकर'
पद पाठ – तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः । 'सस्वर गाकर'
क्रम पाठ – तेन त्यक्तेन , त्यक्तेन भुञ्जीथा .भुञ्जीथा मा , मा गृधः ।

इस पंक्ति के विकृत पाठ के नियम–

आठ प्रकार के विकृत पाठों की अपनी–अपनी जटिल पद्धतियाँ हैं।
उसमें से तीन पद्धतियों जटा, शिखा तथा घन पाठ का नमूना।

जटा पाठ में उक्त मंत्र को इस प्रकार से कहेंगे –
तेन त्यक्तेन, त्यक्तेन तेन , तेन त्यक्तेन, त्यक्तेन भुञ्जीथा, भुञ्जीथा त्यक्तेन, त्यक्तेन भुञ्जीथा, भुञ्जीथा मा, मा भुञ्जीथा, भुञ्जीथा मा, मा गृधः, गृधः मा, मा गृधः
इस पद्धति से वेद मंत्र कंठस्थ करने वाला जटा पाठी कहलाता है।

शिखा पाठ में उक्त मंत्र को इस प्रकार कहा जायेगा–
तेन त्यक्तेन, त्यक्तेन तेन, तेन त्यक्तेन भुञ्ीथा, त्यक्तेन भुञ्जीथा, भुञ्जीथा त्यक्तेन, त्यक्तेन भुञ्जीथा, मा, भुञ्जीथा मा, मा भुञ्जीथा, भुञ्जीथा मा, गृधः
इस प्रकार वेद मंत्रों को कंठस्थ करने वाला शिखा पाठी कहलाता है।

घन पाठ – यह सर्वाधिक क्लिष्ट है। घन पाठ में इस मंत्र का उच्चारण इस प्रकार होता है–
तेन त्यक्तेन, त्यक्तेन तेन तेन त्यक्तेन, भुञ्जीथा, भुञ्जीथा, त्यक्तेन तेन, तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा त्यक्तेन भुञ्जीथा, भुञ्जीथा त्यक्तेन, त्यक्तेन भुञ्जीथा, मा, मा भुञ्जीथा त्यक्तेन, त्यक्तेन भुञ्जीथा मा।

वैदिक पंडितों ने पीढ़ी दर पीढ़ी इस प्रकार की पाठ पद्धतियों से सम्पूर्ण वेदों को कंठस्थ करके वेद मन्त्रराशि को आदिकाल से अब तक सुरक्षित रखा है।

।। वेदांग ।।

जैसे किसी मानव शरीर को उसके विभिन्न अंगों द्वारा जाना समझा जा सकता है उसी प्रकार जिन छः विषयों के ज्ञान द्वारा वेदों के भौतिक और आध्यात्मिक स्वरूप को सही तरह से जाना समझा जा सकता है, उन्हें वेदों के अंगों की संज्ञा दी जाती है।

छन्द को वेदों के पैर, कल्प को हाथ, ज्योतिष को आंख, शिक्षा को नाक, निरुक्त को कान और व्याकरण को मुख माना जाता है। वैदिक साहित्य में इन विषयों के ग्रंथों का महत्वपूर्ण स्थान है।

शिक्षा

- इसमें वेद मन्त्रों के उच्चारण करने की विधि बताई गई है। वेदों का पठन-पाठन इसके बिना संभव नहीं।

व्याकरण

- इससे प्रकृति और प्रत्यय आदि के योग से शब्दों की सिद्धि तथा उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित स्वरों की स्थिति का बोध होता है।

निरुक्त

- वेदों में जिन शब्दों का प्रयोग जिन-जिन अर्थों में किया गया है, उनका वर्णन निरुक्त में मिलता है।

ज्योतिष

- वैदिक यज्ञों और अनुष्ठानों के लिये शुभ समय ज्ञात करने मे ज्योतिष शास्त्र की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

कल्प

- वेदों के मन्त्र का प्रयोग किस कर्म में करना चाहिये, इसका उल्लेख कल्प ग्रंथों में है। इसकी चार शाखायें हैं- श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र और शुल्बसूत्र।

छन्द -

वेदों में प्रयुक्त गायत्री, अनुष्टुप आदि विभिन्न छन्दों की रचना का ज्ञान छन्दशास्त्र से होता है।

संक्षेप में मंत्रों के समुचित उच्चारण हेतु शिक्षा, यज्ञादि कर्मकांड के लिये कल्प, शब्द रूप ज्ञान के लिये छंद तथा व्याकरण, विविध अनुष्ठानों के लिये मुहूर्त आदि हेतु ज्योतिष, शब्दों के सही भावार्थ जानने के लिये निरुक्त आदि का ज्ञान आवश्यक है। इसीलिये इन्हें वेदांग कहा जाता है।

।। वेदों की शाखायें ।।

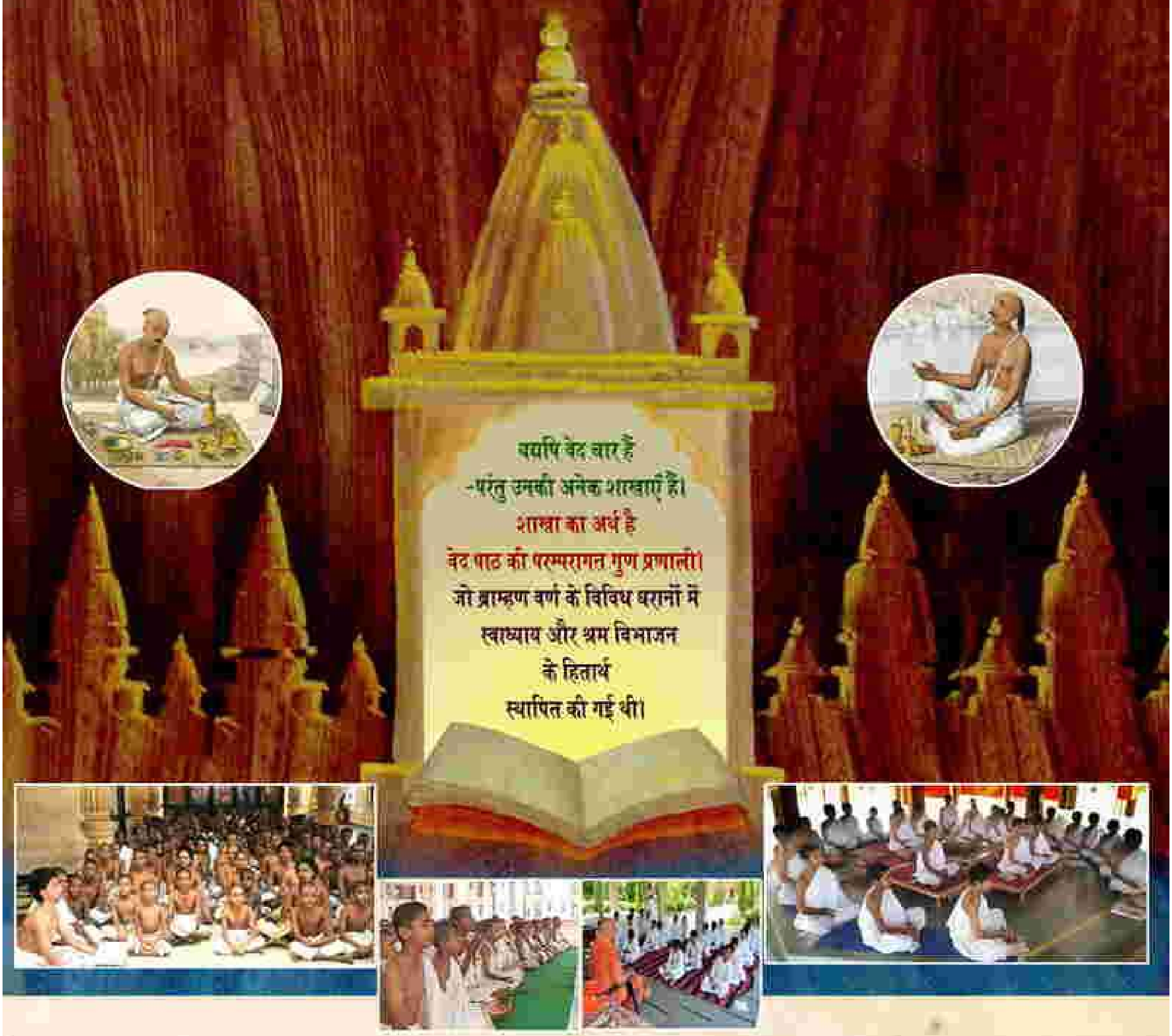

अत: शाखा का अर्थ वेदों की संख्या या उपवेद आदि न होकर विभिन्न पाठ परम्परा वाले ब्राह्मण कुलों की संख्या विशेष है।

इसलिये इस दृष्टि से प्रत्येक वेद की अनेको शाखायें हैं, जिन्होने अपनी-अपनी पाठ परम्पराओं द्वारा वेदों को संजो रखा है। वेदों की 1100 से अधिक शाखायें थी, इनमें से अनेक शाखायें नष्ट हो चुकी हैं।

क्योंकि परम्परागत रूप से इन वेदपाठी परिवारों की चिन्ता समाज द्वारा सम्मानित रूप से की जाती थी। वर्तमान में वेदों के प्रति इस प्रकार का समर्पण भाव समाज और ब्राह्मण वर्ग दोनों ओर से समाप्त होता जा रहा है। अत: ये शाखायें नष्ट होती जा रही है।

।। वेदों में लिपि ।।

वेदपाठ की परम्परा मौखिक है।
इसी आधार पर यह धारणा प्रचारित हो गई
कि वैदिक समय में लिपि या
लिखने की परम्परा नहीं थी।

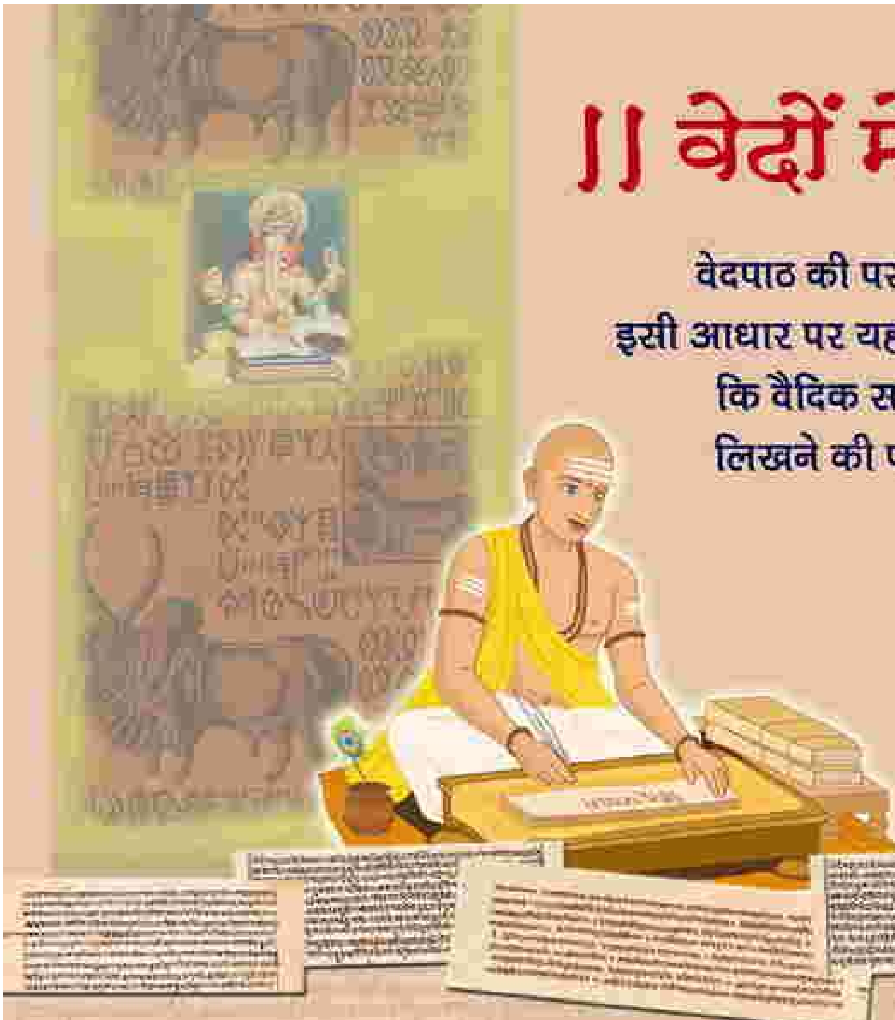

वस्तुतः विशिष्ट प्रकार के उच्चारण से होने वाले कम्पनों के प्रभाव को देखते हुए वेदमंत्रों को लिखने के बजाय पढ़ने की परम्परा थी।

यद्यपि उस काल की
कोई लिखित संहिता नहीं मिलती है परन्तु
वाणी को देखने, उत्कीर्ण करना, अक्षर, ग्रंथ,
लेखनी आदि जैसे कई शब्द वेद में आये है
जिनसे ज्ञात होता है कि
उस समय लिपि का प्रचलन था।
गणित का इतना सूक्ष्म ज्ञान
वैदिक काल में लिपि परम्परा
होने की पुष्टि करता है।

।। वेद के शब्द अनेकार्थवाची ।।

वेदों के मंत्रों के अर्थ को जानने के लिये केवल संस्कृत भाषा का सामान्य ज्ञान ही पर्याप्त नहीं समस्त वेदांगों का ज्ञान आवश्यक है।
क्योंकि वेदों के मंत्रों के अर्थ आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तीन तरह के होते है।
अत: संदर्भ के अनुसार निरूक्त आदि का सहारा लेकर उनके सही अर्थ को जाना जा सकता है।

वैदिक शब्दों के सामान्य संस्कृत अर्थ और निरूक्त के अनुसार अर्थ में कितनी भिन्नता होती है कुछ उदाहरणों से समझा जा सकता है।

वैदिक शब्द	संस्कृत अर्थ	निरूक्त के अनुसार अर्थ
गौ	गाय	पृथ्वी
अहि	सर्प	मेघ
घृताची	वैश्या	रात्रि
अश्व	घोड़ा	राष्ट्र
वराह	शूकर	मेघ
धारा	जल प्रवाह	वाणी
विप्र	ब्राह्मण	विद्वान
गौतम	एक ऋषि	चन्द्रमा
अहिल्या	एक ऋषि पत्नी	रात्रि
इन्द्र	एक राजा	सूर्य
जमदग्नि	एक ऋषि	ऑख

मेरठ विश्वविद्यालय में एक रिसर्च पेपर के अनुसार वेदों में 'गौ' शब्द के ही 32 अर्थ हैं।
उदाहरण – गाय, पृथ्वी, सूर्य किरण, इन्द्रिय, बुद्धि, मन, जाना (अंग्रेजी का GO शब्द गौ ही है), गति आदि।
इसी प्रकार अनेक अर्थों में सें मंत्र के विषय और भाव से संबंधित अर्थ देखकर ही वेद मंत्रों के सही अर्थ तक पहुँचा जा सकता है।

। कुछ प्रमुख ऋग्वेदिक सूक्त ।

ऋग्वेद के मंत्रों का समूह सूक्त कहलाता है। इन सूक्तों में विविध देवताओं की स्तुतियां और उनसे कल्याण के लिये प्रार्थनाएं की गई हैं। प्रार्थना के अलावा अनेक सूक्त पर्यावरण रक्षा, समाज कल्याण और दार्शनिकता से संबंधित हैं। ऐसे सैकड़ों सूत्रों में से कुछ प्रमुख और विश्व स्तर पर चर्चित सूक्त इस प्रकार हैं।

1. अस्यवामीय सूक्त (ऋग्वेद 1/164) – 52 मंत्रोंवाला यह सूक्त ऋग्वेद के तत्वज्ञान का प्रतिपादक है।

2. पुरुष सूक्त (ऋग्वेद 10/90)– परमात्मा और उससे हुई सृष्टि का वर्णन इस सूक्त का मुख्य विषय है।

3. हिरण्यगर्भ सूक्त (ऋग्वेद 10/121)– सृष्टि के मूल कारण भूत तत्व को यहां 'हिरण्यगर्भ' नाम दिया गया है। हिरण्यगर्भ की महिमा का वर्णन इस सूक्त का मुख्य विषय है।

5 नासदीय सूक्त (ऋग्वेद 10/129)– यह सूक्त महान दार्शनिक विचारों को स्थापित करने के कारण संपूर्ण वैदिक सूक्त में सर्वोच्च स्थान पर रखा जाता है। इसका प्रारंभ 'न असत' से हुआ है। अंतिम मंत्र में संकेत है कि परमेश्वर ही सृष्टि का करता है और सृष्टि से सम्बद्ध ज्ञान में वेद ही एकमात्र परम प्रमाण है।

6 अघमर्षण सूक्त (ऋग्वेद 10/190)– यह सृष्टि सूक्त स्पष्ट करता है कि विश्व के संपूर्ण तत्व परमेश्वर से ही उत्पन्न हुए हैं।

7 पुरुरुवा उर्वशी संवाद सूक्त (ऋग्वेद 10/95) – पुरुरुवा और उर्वशी की सनातन कथा का मूल रूप इस सूक्त के संवाद से प्राप्त होता है। कालिदास और अनेक कवियों ने इस आख्यान की हृदयस्पर्शिता को अंगीकार कर, इसे अपने काव्य का विषय बनाया है।

8 अक्ष सूक्त (ऋग्वेद 10/34)– अक्ष सूक्त 'कितव सूक्त' के नाम से भी विख्यात है। इसमें 14 मंत्र हैं, जिसमें पासों की निंदा, अक्षक्रीड़, अक्षों के प्रति जुआरी का आकर्षण और इस व्यसन के कारण उसकी दुर्दशा आदि के विस्तृत चित्रण किए गए हैं।

9 मंडूक सूक्त (ऋग्वेद 7/103)– मंडूक सूक्त वस्तुत: मेघ या वर्षा सूक्त ही है। इसमें वर्षा लाने में सहायक के रूप में मंडूकों का वर्णन हुआ है। वेदपाठी ब्राह्मणों के बर्ताव का मंडूकों के व्यवहार की साम्यता को एक रूपक की तरह प्रस्तुत किया गया है, जो इस सूक्त की काव्यात्मकता का आधार है।

10 आप्री सूक्त (ऋग्वेद 1/13 आदि)– ऋग्वेद में 10 आप्री सूक्त मिलते हैं जिसमें एक क्रम से 12 आप्री देवताओं की स्तुतियां की गई है। जिससे देवता प्रसन्न हो, उसे ही 'आप्री' कहते हैं।

11 संज्ञान सूक्त (ऋग्वेद 10/191)– सामाजिक सद्भाव के प्रेरक के रूप में संज्ञान सूक्त उल्लेखनीय हैं। सभी जनों को एक समान कल्याण का दृष्टिकोण असंदिग्ध रूप से राष्ट्र को उन्नति की ओर ले जाता है। आज राष्ट्र को इस भावना की महती आवश्यकता है।

12 श्रद्धा सूक्त (ऋग्वेद 10/151) – पाँच मंत्रों के इस सूक्त में श्रद्धा का मानवीकरण कर उसकी स्तुति की गई है। यह सूक्त मनोभावों की सूक्ष्म विवेचना में वैदिक ऋषि परंपरा की पराकाष्ठा का ज्वलंत उदाहरण है।

13 ज्ञान सूक्त (ऋग्वेद 10/71)– ग्यारह मंत्रों के इस सूक्त में ज्ञान की महिमा वर्णित है। ऋग्वेद में यदि कोई सूक्त सर्वाधिक उपयोगी है तो वह यही है। वाणी की उत्पत्ति और उसके प्रयोग पर इसमें महत्वपूर्ण जानकारी दी गई है।

14 दु:स्वाप्नघ्नाशन सूक्त (ऋग्वेद 10/64)– पांच मंत्रों का यह छोटा-सा सूक्त, दु:स्वप्नों के निवारण की आवश्यकता और उपायों का संकेत करता है।

15 सपत्नाधन सूक्त (ऋग्वेद 10/166) पांच मंत्रों के इस छोटे से सूक्त में उपासक ने इंद्र से शत्रुओं के विनाश की कामना की है। शत्रुओं को पराजित करने, सर्वश्रेष्ठ और समर्थ बनने की इच्छा को इस सूक्त में व्यक्त की गई है।

16 विवाह सूक्त(ऋग्वेद 10/85)– सूर्या सावित्री के 47 मंत्रों का यह एक विस्तृत सूक्त है जिसमें सूर्या के विवाह का वर्णन है, साथ ही विवाह और आशीर्वाद के मंत्र भी हैं। भारतीय संस्कृति में विवाह संस्कार के स्वरूप का प्रथम अंकन विवाह सूक्त में प्राप्त होता है।

17 औषधीय सूक्त (ऋग्वेद 10/97)– अथर्वण भिषग ऋषि का यह 23 मंत्रों का एक बड़ा ही महत्वपूर्ण सूक्त है जिसमें औषधियों को माता रूप में संबोधित किया गया है और उनके स्वरूप और गुणों का वर्णन है।

अन्य वेदों में भी इसी प्रकार जल, पृथ्वी, वायु, अन्न, समानता, सद्भाव और ज्ञान विषयक अनेकों सूक्त है। परिवार, राष्ट्र, विश्व और सम्पूर्ण सृष्टि के कल्याण चाहने वालों के लिये इन सूक्तों का पाठ और उसके अनुरूप आचरण आवश्यक है।

...यदि वर्तमान में प्रचलित सारी वैदिक पुस्तकें नष्ट हो जायें.....

तो भी
ब्राह्मण कुलों के मुंह से
वही संहितायें पुनः अक्ष
रशः लिखी
जा सकती है।

काल के प्रवाह में विश्व की सभ्यताओं के ग्रंथ नष्ट हो गये, परन्तु मौखिक पाठ परम्परा के कारण "वेद" कालजयी रूप में दुनियाँ के सामने खड़े हैं।

हम सबका यह कर्तव्य है कि वेदों के संरक्षण के लिये इन वेदपाठी ब्राह्मण कुलों के संरक्षण का दायित्व भी स्वीकार करें ताकि वे वेदों के संरक्षण के इस महत्वपूर्ण कार्य में निश्चिंत होकर अपना समय दे सकें।

।। मंत्रद्रष्टा ऋषिकायें ।।

अदिति
वाक्
वितृहा
सिखंडिनी
काश्यपी
विश्ववारा
विष्पला
शची
शश्वती
इन्द्र माताऐं
श्रध्दा कामायनी
इन्द्राणी
सरमा
उर्वशी
सर्प राज्ञी
घोषा
सिकता
जुहु
सुदेवौ
दक्षिणा
सूर्या
नितवरी रात्रि
लोपामुद्रा
वसुक पत्नी
यमी वैवस्वती

दो दर्जन से अधिक मंत्रदृष्टा ऋषिकाओं के रचे हुऐ सूक्त वेदों में हैं।
यह तालिका उन कुप्रचारकों के मुँह पर करारा तमाचा है, जो कहते हैं कि
शूद्रों तथा स्त्रियो की वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है।
वेद के बाद के कालखंड में एसी कुछ धारणायें अवश्य पनपी
और उन्ही अपवादों को हिन्दू विरोधी जोर शोर से प्रचारित करते हैं। विचार कीजिये,
जो महिलाये और शूद्र वर्ण के लोग वेद मंत्र रच सकते है, वे वेदों को पढ़ क्यों नहीं सकते?

।। वेद वाणी पर सबका अधिकार ।।

शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्तर पर प्रत्येक विद्यार्थी को पूर्ण मानव,
सुयोग्य गृहस्थ एवं आदर्श नागरिक बनाने के लिए संपूर्ण विषय
एवं विधि आदि की विस्तृत विचार प्रक्रिया वेदों में है।
स्त्रियों एवं शूद्रों के विषय में शिक्षा का निषेध बताकर भ्रांतियाँ फैलाई जाती है
जब कि स्वयं वेदो के अनुसार ही शिक्षा पर सभी का अधिकार है ।।

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्याः शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च। प्रियो
देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं मे कामः समृध्यतामुप मादो नमतु ॥
यजुर्वेद 26–2

हे मनुष्यो! मैं ईश्वर,
जैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री, सेवक और उत्तम लक्षणयुक्त
अन्त्यज आदि के लिए सुख देने वाली वेदरूप वाणी का उपदेश करता हूँ,
वैसे आप लोग भी अच्छे प्रकार उपदेश करें। ॥

वेद ज्ञान हर प्राणी के लिये है। हर मनुष्य के मंगल के लिए है। परन्तु वेद मंत्रों का उपयोग केवल यज्ञोपवीत धारी द्विज ही कर सकते हैं, अन्य लोग नहीं। शूद्र एवं यज्ञोपवीत–विहीन जन वेद मंत्रों के अर्थ का उपयोग कर सकते हैं। अर्थों के साथ हवन भी कर सकते हैं। पर मंत्रों का नहीं। यह फर्क इसलिये है क्योंकि मंत्र जो हैं वे छंदों में बद्ध हैं और वे प्रकृति में वाक् स्पंदनों से सम्बंधित हैं। बिना गायत्री दीक्षा और यज्ञोपवीत के इन छंदों का उपयोग निषिद्ध है। ऐसा करने से प्रकृति में विक्षोभ उत्पन्न होता है तथा चराचर जगत पर उसका दुष्प्रभाव पड़ता है।

।। श्रुति और स्मृति ।।

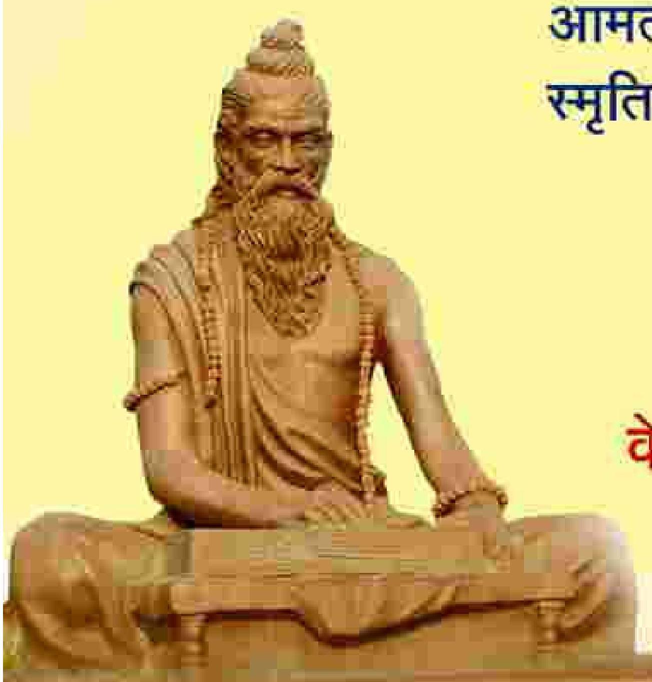

आमतौर पर श्रुति यानि वेदों के साथ
स्मृति शब्द का प्रयोग किया जाता है।

'स्मृतिग्रंथ'
भारतीय संस्कृति में
समाज के विभिन्न वर्गों के लिये
वेद आधारित आचार संहिता
माने जाते है।

स्मृति नाम सुनते ही मस्तिष्क में मनु स्मृति का नाम आता है
क्योंकि यह सबसे प्राचीन और सबसे लोकप्रिय स्मृति ग्रंथ है।
लेकिन अलग–अलग युगों के हिसाब से अलग–अलग स्मृतियाँ प्रचलन में रही है।
जैसे याज्ञवल्क्य स्मृति, पाराशर स्मृति, देवल स्मृति आदि। हर व्यक्ति के स्मरण
में रहने योग्य होने के कारण इन ग्रंथों को स्मृति कहा जाता है।

वेद परमात्मा की वाणी होने के कारण हर काल में अपरिवर्तनीय माने जाते हैं।
लेकिन स्मृति, ऋषि–मुनियों और विद्वानों द्वारा देश,काल, परिस्थितियों के
अनुसार वैदिक जीवन जीने के लिये बनाये गये रीति–रिवाजों का विधान है।
जो समय के हिसाब से बदलते रहते है

अंग्रेजों ने जैसे षडयंत्र पूर्वक वेदों की अनुवाद के नाम पर भ्रष्ट करने
का प्रयास किया वैसे ही हिन्दू विरोधी कम्युनिस्ट, वामपंथी लोग
स्मृति ग्रंथों के अर्थों का अनर्थ करके उनके प्रति
भी समाज में दुर्भावना भर रहे हैं।

वेदों की आधारभूमि पर पनपे

।। छः वैदिक दर्शन ।।

वेदों में भौतिक ज्ञान, तत्व चिंतन,यज्ञ और प्रकृति अन्वेषण
के साथ-साथ दार्शनिक चिंतन भी बहुत हुआ है।
आरण्यक और उपनिषद मूलत: आत्म चिंतन के ही ग्रंथ हैं।

वेदोत्तर काल में भारत में अनेक दार्शनिक विचारों का उदय हुआ जिन्हें
आस्तिक और नास्तिक या ब्राम्हण और श्रमण के नाम से भी जाना जाता है।
परन्तु इन्हें वैदिक या अवैदिक कहना अधिक उचित होगा।
अवैदिक दर्शन में बौद्ध, जैन, चार्वाक या आजीवक आदि है।

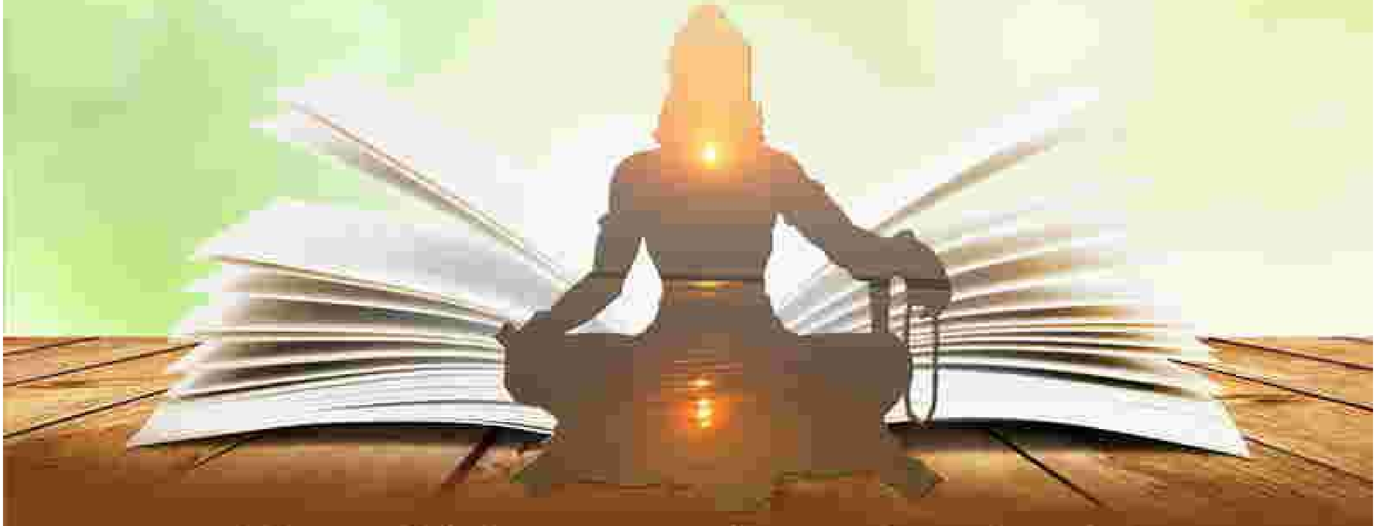

वैदिक दर्शनों में प्रमुख रूप से छ: दर्शन माने जाते हैं।

सांख्य दर्शन • न्याय दर्शन • वैशेषिक दर्शन
योग दर्शन • पूर्वी मीमांसा • वेदान्त दर्शन

इन दर्शन ग्रंथों को वैदिक ग्रंथों का ही विस्तार माना जा सकता है,
क्योंकि उपनिषदो की तरह इनमें भी ब्रह्मविद्या का ही विवेचन किया गया है
और आत्मकल्याण का मार्ग प्रशस्त किया गया है।

।। दर्शन और फिलासफी ।।

आम तौर पर दर्शन का अंग्रेजी अर्थ फिलासफी किया जाता है
परन्तु दोनों मे मूलभूत अंतर है।
फिलॉसफी केवल बुद्धि की दम पर जगत और जगत के पार को
जानने का प्रयास है, वहीं दर्शन सामान्य बुद्धि से आगे
गहरे ध्यान की अवस्था में, जगत और जगत के पार के रहस्यों
को प्रत्यक्ष अनुभव करने की गई ऐसी विधि है,
जिसे अपनाकर जिज्ञासु लोग
स्वयं भी परम सत्य का
दर्शन कर सकें।

'यतो वाचा निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सः'
जहॉं मन, वाणी और बुद्धि की सीमा समाप्त हो जाती है।
उस सीमा के पार जाकर परम तत्व को जानना और उस तक पहॅुंचने
का मार्ग प्रशस्त करना, भारतीय दर्शन की विशेषता है।
कपिल, गौतम, पतंजलि, कणाद, जैमिनी और व्यास आदि
महर्षियों ने अपने दर्शनों में ऐसी ही दिव्य विधियॉं प्रशस्त की है।

|| षड वैदिक दर्शन ||

|| सांख्य दर्शन ||

महर्षि कपिल द्वारा प्रवर्तित सांख्य सिद्धान्त भारतीय दर्शनों में सबसे प्राचीन माना जाता है। यह दर्शन सृष्टि पर विचार एवं विवेचना करते हुऐ ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति का कारण 'प्रकृति' को मानता है। इसमें प्रकृति के कारणभूत 24 तत्व या गुणों के साथ 25 वें परम सूक्ष्म चेतन तत्व का विवेचन है, जिसे पुरूष कहा गया है। यह पुरूष तत्व सामान्य जीवात्मा भी है और पूर्ण समर्थ, सर्वज्ञानी, सर्वव्यापी परमात्मा भी है। सांख्य दर्शन प्रारंभ से ही बहुत लोकप्रिय रहा है।

इसका प्रमुख सिद्धान्त है कि अभाव से भाव की या असत् से सत् की उत्पत्ति कदापि सम्भव नहीं है। अन्य भारतीय दर्शन की भांति सांख्यदर्शन भी आत्मा की विद्यमानता और पुनर्जन्म में विश्वास करता है और पक्षपात रहित होकर क्लेश का कारण मूल प्रकृति एवं पुरुष यानि आत्मा को मानता है।

महर्षि कपिल को पुराणों में भगवान विष्णु के अवतार के रूप में मान्यता दी गई है। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता के एक पूरे अध्याय सांख्य योग में सांख्यदर्शन का सिद्धान्त वर्णन किया है।

|| षड वैदिक दर्शन ||

|| न्याय दर्शन ||

न्यायदर्शन में महर्षि गौतम ने वैशेषिक दर्शन के पराभौतिकता को विकसित तथा संवर्धित किया है। इस दर्शन के 528 सूत्रों में एक ईश्वर की विद्यमानता, आत्मा की बहुलता एवं आण्विक ब्रह्माण्ड के साथ-साथ जगत् की पराभौतिक समस्याओं की आलोचनात्मक समीक्षा की गयी है।

न्यायशास्त्र मनोविज्ञान, तर्क एवं पराभौतिकता की तार्किक एवं वैज्ञानिक व्याख्या भी प्रस्तुत करता है। अपनी तार्किक शैली के द्वारा विवेचना के कारण इसे न्याय दर्शन कहा जाता है। महर्षि गौतम ने अपने इस दर्शन में पदार्थों के तत्त्वज्ञान द्वारा मोक्ष प्राप्ति का वर्णन किया है तथा समझाया है कि पदार्थों के तत्त्वज्ञान से मिथ्याज्ञान की निवृत्ति होती है।

इसमें परमात्मा को सृष्टिकर्ता, निराकार, सर्वव्यापी तथा जीवात्मा को देह से अलग और प्रकृति को अचेतन तथा सृष्टि का उपादान कारण माना गया है। प्रकृति और परमात्मा दोनों का अस्तित्व स्वीकार करने के कारण यह द्वैतवाद का प्रतिपादक दर्शन माना जाता है।

।। षड वैदिक दर्शन ।।

।।वैशेषिक दर्शन ।।

महर्षि कणाद् ने वैशेषिक अपने दर्शन में, ब्रह्माण्ड में पदार्थों के
क्रम परिवर्तन एवं संयोजन के परमाणविक सिद्धान्त की विवेचना की है।
इस दर्शन को महर्षि गौतम के न्यायदर्शन का पूरक भी माना जाता है,

वैशेषिक दर्शन जगत् के प्रकृति या विभिन्न विविध पदार्थों के गुणधर्म की
विवेचना करते हुए धर्म एवं अध्यात्म की शिक्षा का प्रतिपादन करता है।

सुख से मोह तथा कामना उदित होती है, जबकि दु:ख से घृणा।
'स्व' का वास्तविक ज्ञान, अज्ञान को नष्ट कर देता है,
परिणामस्वरूप समस्त द्वेष एवं मोह स्वत: समाप्त हो जाता है
इसी प्रक्रिया से मोक्ष मार्ग प्रशस्त होता है।

कणाद के अनुसार द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य और विशिष्ट समवाय'
इन पदार्थों के सही ज्ञान से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है।

।। षड वैदिक दर्शन ।।

।। योग दर्शन ।।

योगदर्शन के प्रवर्तक महर्षि पतंजलि ने वेदों के आधार पर ही योगदर्शन का प्रवर्तन किया। उन्होंने मनुष्य के कष्टों के निवारणार्थ योग विज्ञान को योगदर्शन के रूप में प्रस्तुत किया। वे एक दार्शनिक ही नहीं शरीर से आत्मा तक को जानने वाले महान् वैज्ञानिक थे। उन्हे शेषनाग के अवतार के रूप में जाना जाता है।

'योग' शब्द का अर्थ है – जोड़ना, समाहित करना, एकाग्र करना। अपनी आत्मा को परमात्मा के साथ संयुक्त करना ही 'योग' है। योगदर्शन 195 सूत्रों , चार अध्यायों– समाधिपाद, साधना पाद, विभूतिपाद, कैवल्यपाद के रूप में है। इसे राजयोग भी कहा जाता है। इसके 8 अंग हैं – यम, नियम, आसन, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान, धारणा एवं समाधि।

इसमें मानवजीवन एवं मानवीय व्यवहार की सविस्तार विवेचना की गयी है। यह 'अष्टांग योग पद्धति' अहिंसा, सत्यनिष्ठा, मानसिक एवं दैहिक शुचिता व संयम पर आधारित है, जिसमें मनुष्य के चारित्रिक एवं नैतिक मूल्यों की रक्षा पर विशेष बल दिया गया है।

।। षड वैदिक दर्शन ।।

।। पूर्व मीमांसा ।।

पूर्व मीमांसा के प्रवर्तक महर्षि जैमिनी महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यास के शिष्य थे।
उनकी पूर्वमीमासा सूत्र में कुल 3 हजार सूत्र हैं, जो धर्म की व्याख्या करते हैं।
जैमिनि के अनुसार वेदों में मानव कल्याणार्थ घोषित वे सभी कर्म,
जो शान्ति एवं सुख प्राप्ति की कुंजी हैं, धर्म की परिभाषा में आते हैं।

वैदिक धर्म यानि वेदों के अनुसार मनुष्य के लिये कुछ कर्म करने योग्य तथा कुछ कर्म न करने योग्य माने गये हैं। इन्हे सत्कर्म और दुष्कर्म भी कहा जा सकता है। महर्षि जैमिनी मोक्षप्राप्ति के लिए ऐसे ही सत्कर्मो को ही मोक्ष के लिये आवश्यक मानते हैं और दुष्कर्मो को क्लेश, कष्ट एवं दु:ख का मूल कारण मानकर उन्हें त्यागने का निर्देश करते है।

धार्म के लिए जैमिनी ने वेदों को परम प्रमाण कहा है।
उनके अनुसार यज्ञों में मन्त्रों के विनियोग, श्रुतिवाक्य, प्रकरण,
स्थान एवं समाख्या को धर्म का मौलिक आधार माना जाता है।

संक्षेप में यह दर्शन वैदिक कर्मकांडे को प्रमुखाता देकर
उन्हे ही मोक्ष का साधन मानता है।

।। षड वैदिक दर्शन ।।

।। वेदान्त दर्शन ।।

वैदिक विज्ञान के परमज्ञानी महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यास महाभारत काल के महान ऋषि थे, जिन्होंने वेद संहिता के चार भाग किये, अनेक शास्त्रों तथा पुराणों की रचना की और वेदों के ज्ञान भाग को वेदान्त दर्शन के रूप में प्रस्तुत किया।

कथानकों के अनुसार व्यासजी, ब्रह्मर्षि वसिष्ठ के पौत्र तथा ऋषि पराशर और सत्यवती के पुत्र हैं। वादरी में उनका आश्रम होने के कारण उन्हें बादरायण व्यास के नाम से भी जाना जाता है। महान ज्ञानी महर्षि वेदव्यास ने उत्तरमीमांसा या वेदान्त से जगत् को परिचित कराया।

वस्तुत: वेदान्त वेदों में वर्णित ब्रह्मविद्या पर रचित निबन्ध ग्रंथ है, जिसमें जगत् की सृष्टि या ब्रह्माण्ड के सृजन का ब्रहाज्ञान है। चूंकि यह समस्त ज्ञान यानि वेदों का अन्त है और इस दर्शन के ज्ञान के पश्चात् कुछ भी जानना शेष नहीं रहता है, इसीलिये इसे वेदान्त दर्शन भी कहते हैं। इस दर्शन की सर्वाधिक व्याख्यायें आचार्यो द्वारा की गई है।

अनेक मतों और संप्रदायों का निर्माण इसी दर्शन के आधार पर हुआ है।

ज्योतिष ग्रंथ

ज्योतिष विद्या की गणना वेदांग के रूप में की जाती है।
ब्राह्मण ग्रंथों में इसका विस्तार से वर्णन है।
ज्योतिष ज्ञान प्रारंभ में यज्ञ आदि के लिये शुभ मुहूर्त और
कृषि आदि के लिये प्रयोग में लाया जाता था।

भारत की ज्योतिष गणना अद्भुत और प्रामाणिक है।
विभिन्न ग्रहों के आकार और गति, ग्रहण आदि के बारे में
हजारों वर्ष पूर्व भारतीय ऋषियों ने जो निष्कर्ष दिये है
वे आधुनिक यंत्रों से जाने गये निष्कर्षों से प्रमाणित हो चुके है।

महर्षि भरद्वाज, आर्यभट्ट, लल्लाचार्य, महोत्पल, ब्रम्हगुप्त, भास्कराचार्य
आदि ऋषियों ने कालान्तर में ज्योतिष पर अनेक ग्रंथों की रचना की है।
ज्योतिष विद्या ग्रहों की गति आदि की गणना से संबंधित विषय था।
बाद में वराह मिहिर ने इस विद्या में फलित ज्योतिष को जोड़कर
इसे और लोकप्रिय बनाया।

|| वैदिक गणित ||

गणित की दशम रीति वैदिक काल में ज्ञात थी।
इसी आधार पर 'दस खरब' तक की गणना की जाती थी।

ज्योतिष गणनाओं और खगोल विद्या में ग्रह–नक्षत्रों की दूरी, गति, घन आदि की गणना, यह भारत की प्राचीन अंक और बीज गणित विद्या के अति उन्नत होने का प्रमाण है।

यज्ञ शालाओं भवन निर्माण कला आदि के वर्णनों से पता चलता है कि वैदिक ऋषियों को अंकगणित एवं रेखा गणित का उत्तम ज्ञान था।

बड़ी से बड़ी संख्याओं का जोड़, घटाव, गुणा, भाग, वर्ग एवं वर्गमूल आदि की अत्यंत सरल विधि वेदों में है।

शून्य का आविष्कार और अंतर्राष्ट्रीय अंक संकेत भी इन्हीं वैदिक और वेदोत्तर ऋषियों की देन है।

बाद में इसी गणित के ज्ञान का विस्तार आर्यभट्ट, वराहमिहिर, भास्कराचार्य, ने विभिन्न ग्रंथों मे किया। वर्तमान में अनेकों विद्वान-लेखक एवं संत आदि इस विषय में शोधरत हैं। वैदिक गुणार्थ से सरल करके बनाई गई प्रणाली वैदिक गणित अत्यंत लोकप्रिय हो रही है।

।। विभिन्न नीति शास्त्र ।।

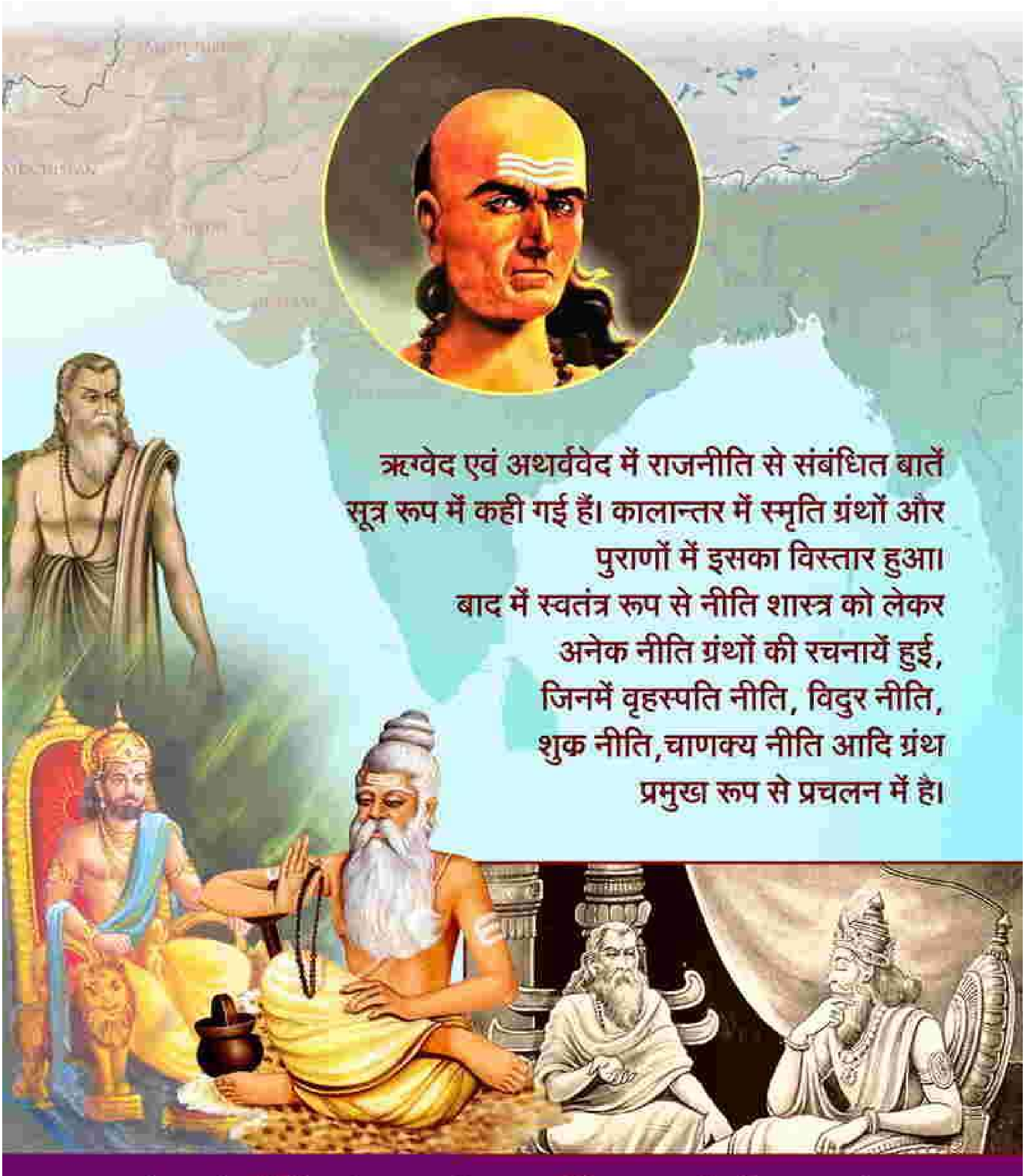

ऋग्वेद एवं अथर्ववेद में राजनीति से संबंधित बातें सूत्र रूप में कही गई हैं। कालान्तर में स्मृति ग्रंथों और पुराणों में इसका विस्तार हुआ। बाद में स्वतंत्र रूप से नीति शास्त्र को लेकर अनेक नीति ग्रंथों की रचनायें हुई, जिनमें वृहस्पति नीति, विदुर नीति, शुक्र नीति,चाणक्य नीति आदि ग्रंथ प्रमुख रूप से प्रचलन में हैं।

ये सारे नीति ग्रंथ उपवेद अर्थवेद का ही विस्तार है।

क्योंकि इन शास्त्रों में वेदवाणी या वैदिक भावना के अनुसार ही राजा और प्रजा के कर्तव्य, दण्ड, कर और अन्य बातों को विधिवत रूप से समय के अनुसार वर्णित किया गया है।

|| वास्तु शास्त्र ||

वेदों में भवन निर्माण के संदर्भ में वास्तु की चर्चा है जिसमें भूमि, दिशाओं, जल, हवा, वृक्ष आदि को जोड़कर बनाये भवनों का उल्लेख है, जिनमें परिवार के सुखापूर्वक रहने की कामना की गई है।

वास्तु के बारे में विस्तृत विवरण बाद के ग्रंथों में मिलता है। मान्यताओं के अनुसार दक्षिण भारत में वास्तु विज्ञान की नींव मय दानव और उत्तर भारत में विश्वकर्मा ने रखी। दोनों ही शिल्पकार, निर्माता और यंत्र निर्माता माने जाते हैं।

भृगु, अत्रि, वशिष्ठ, विश्वकर्मा, मय, नारद, नग्नजीत, भगवान शंकर, इंद्र, ब्रह्मा, कुमार, नंदीश्वर, शनक, गर्ग, वासुदेव, अनिरुद्ध, शुक्र और बृहस्पति ये 18 वास्तु शास्त्र के उपलेखक माने जाते हैं। उन्होंने महाराज मनु को वास्तु की शिक्षा दी थी। परन्तु सबके ग्रंथ वर्तमान में उपलब्ध नहीं है।

वर्तमान में प्रचलित वास्तु का वर्णन मत्स्य पुराण और अन्य कई ग्रंथों में मिलता है। वर्तमान में वास्तु के आधार पर अन्य लेखकों के अनेक ग्रंथ प्रचलित हैं जिनके आधार पर भवन निर्माण अत्यंत लोकप्रिय हो रहा है।

।। चरक और सुश्रुत संहिता ।।

आयुर्वेद 'उपवेद' के रूप में सर्वाधिक लोकप्रिय विधा रही है।
आम जन के स्वास्थ्य से जुड़ा विषय होने के नाते
इसका निरंतर विकास होता रहा।

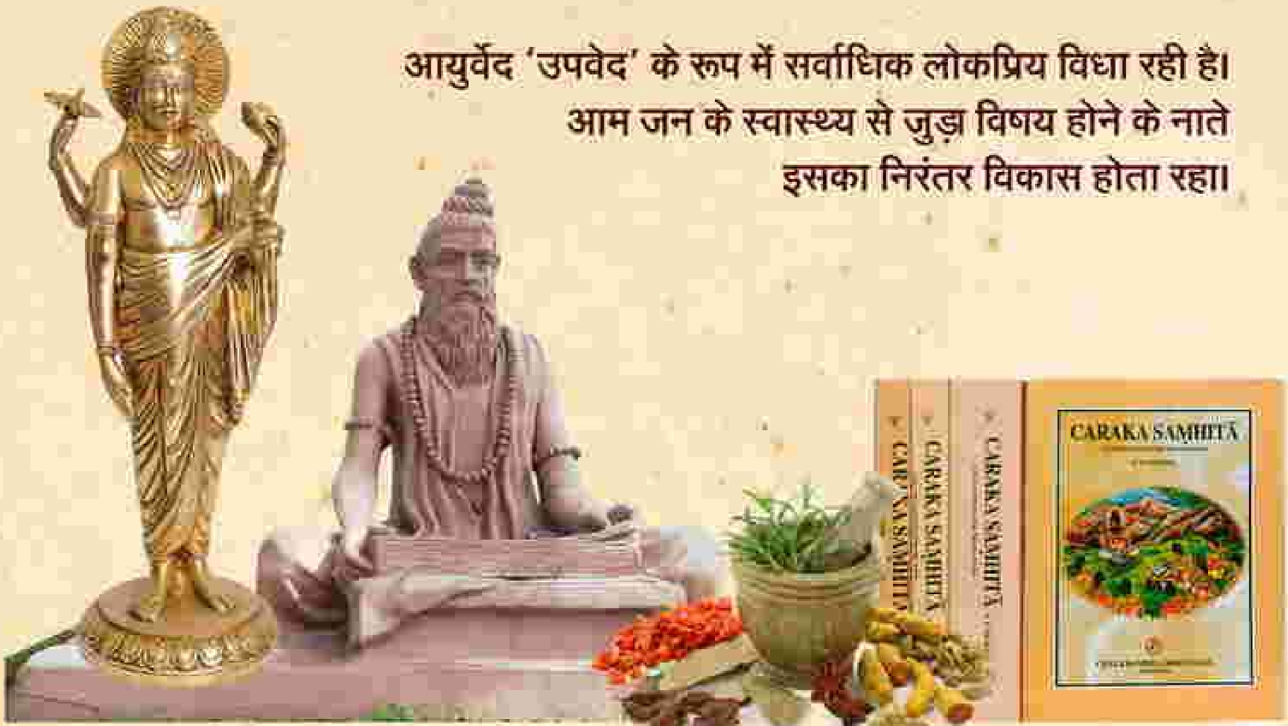

महर्षि चरक ने इसके औषधीय चिकित्सा
और महर्षि सुश्रुत ने शल्य चिकित्सा पर जो संहिताये लिखी है।
वे वर्तमान में आयुर्वेद के आधारभूत ग्रंथ माने जाते है।
इनके अलावा वाग्भट्ट और जीवक आदि अनेक ऋषियों ने भी
आयुर्वेद पर अनेक प्रामाणिक ग्रंथों की रचना की है।

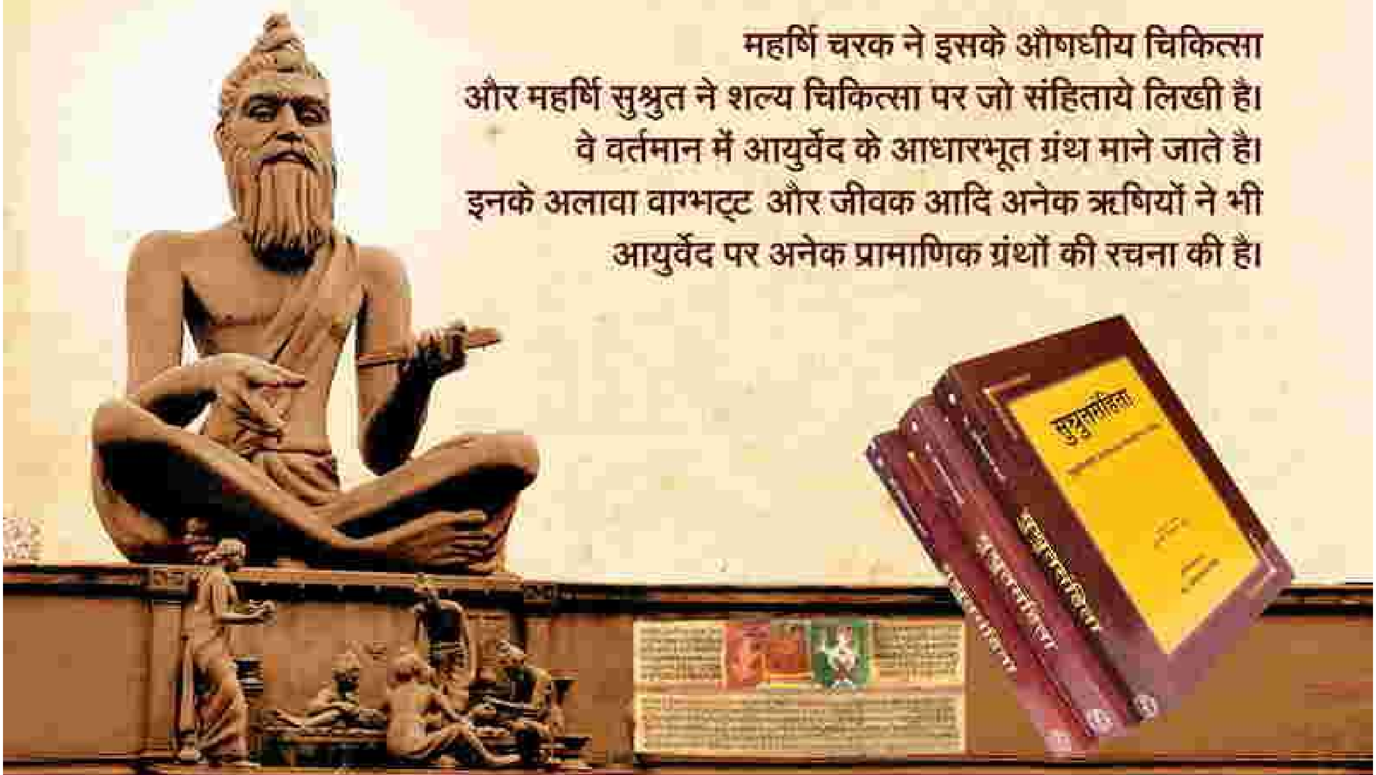

इन ग्रंथों की दुर्लभ पांडुलिपियों को सहेजकर उन्हें प्रामाणिक रूप देने का
स्तुत्य कार्य पतंजलि शोध संस्थान के आचार्य बालकृष्ण जी द्वारा किया जा रहा है।

|| आयुर्वेद परम्परा ||

वैदिक ज्ञान के विस्तार का यह अंग उपवेद के नाम से जाना जाता है। शरीर विज्ञान का सम्पूर्ण ज्ञान, उसके रोग और रोग निवारक तत्वों का भी संपूर्ण ज्ञान आयुर्वेदिक साहित्य में उपलब्ध है। माना जाता है कि यह ज्ञान स्वयं ब्रह्मा जी ने अश्विनी कुमारों को दिया जिनसे इन्द्र, सोम, धनवंतरी से होते हुए जगत में प्रकट हुआ। आयुर्वेद के इन ग्रंथों में चिकित्सा विज्ञान की आठ प्रणालियों का वर्णन है, इसलिये इसे अष्टांग आयुर्वेद भी कहा जाता है।

इस विधा के बाद में भरद्वाज, चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट, जीवक आदि अनेक आचार्य और उनके लिखे ग्रंथ प्रसिद्ध हुए।

इन सभी आचार्यों के अनुसार चिकित्सा एक धार्मिक और पारमार्थिक कृत्य की तरह होती है। इसीलिये वैदिक युग में मंत्रों के अलावा जिन दिव्य औषधियों से रोग निवारण किया जाता था उन वनस्पतियों और औषधियों को प्रार्थनापूर्वक उखाड़कर लाने, उनसे दवा निर्माण करने और रोगी को खिलाने में ज्योतिषीय आधार पर शुभाशुभ समय की मुख्य भूमिका होती है। तभी ये पूरी तरह प्रभावकारी होती हैं।

कुछ वर्षों पूर्व तक यह विधा अस्तित्व में तो थी पर वर्तमान में बाबा रामदेव, राजीव दीक्षित जैसे महामानवों के प्रयत्न से इसका प्रचलन बहुत बढ़ गया है। ऐलोपैथी के दुष्प्रभाव और कोरोना काल में तो इसकी महत्ता को पूरा विश्व स्वीकार करता जा रहा है।
योग की तरह प्राकृतिक चिकित्सा, सूर्य चिकित्सा, गौमूत्र थैरेपी आदि वैदिक विधाओं की तरफ भारत ही नहीं विश्व का जनमानस तेजी से उन्मुख होता जा रहा है।

पौराणिक साहित्य

पौराणिक साहित्य को विशुद्ध रूप से वैदिक ग्रंथों के रूप में मान्यता नहीं है। ये आगम ग्रंथों की श्रेणी में आते है। जन सामान्य की भाषा में वेद और पुराण एक ही तरह के ग्रंथ हैं पर वस्तुत: इनमें काफी अंतर है।

पुराण जन सामान्य के लिये रोचक तरीके से लिखे गये ग्रंथ है, जिनमें विभिन्न प्रकार के देवताओं को आधार बनाकर वैदिक शिक्षाओं, इतिहास, नीति, राजवंशों, ज्योतिष, लोक कथाओं आदि का इस प्रकार समावेश किया गया है कि आम जनमानस में ये वेदों से भी अधिक लोकप्रिय हो गये है।

इनकी मूल संख्या 18 मानी जाती है। जो इस प्रकार है।
1 मार्कण्यडेयपुराण, 2 मतस्यपुराण, 3 भागवतपुराण, 4 स्कन्दपुराण, 5 ब्रम्हाण्डपुराण, 6 ब्रम्हपुराण, 7 ब्रम्हवैवर्तपुराण, 8 विष्णुपुराण, 9 वराहपुराण, 10 वामनपुराण, 11 वायु पुराण, 12 अग्नि पुराण, 13 नारदपुराण, 14 पद्मपुराण, 15 लिंगपुराण, 16 गरूड़पुराण, 17 कूर्मपुराण, 18 भविष्यपुराण

इसके अतिरिक्त शिव, नरसिंह, देवीभागवत, वरूण आदि अनेक पुराण प्रचलन में हैं।
इतना ही नहीं वर्तमान में अनेक पंथों द्वारा बनाये जा रहे अपने नवीन ग्रंथों को भी पुराण की संज्ञा दी जा रही है।

श्रीमद्भागवत, देवी भागवत तथा शिव पुराण आदि का पठन-पाठन वर्तमान में बहुत अधिक प्रचलन में है। ये सभी पुराण स्वयं को वेदों से अनुप्राणित मानते हैं।

आर्य समाज आदि अनेक वैदिक पंथों द्वारा पुराणों की निंदा की जाती है परन्तु उससे इनका महत्व कम नहीं हो जाता।
इनमें जो वैदिक संदेश सूत्र और कथा आदि रूपों में है वह इन्हें वेद के समकक्ष बनाता है।

नाट्य शास्त्र

सामवेद के उपवेद गन्धर्व वेद के रूप में मान्य नाट्य शास्त्र को
पंचम वेद के समान माना जाता है।
भरतमुनि ने वेदों से सार लेकर संगीत नृत्य और अभिनय कलाओं
पर आधारित इस नाट्यशास्त्र नामक ग्रंथ की रचना की।
'नाट्यशास्त्र' नामक इस ग्रन्थ को भारतीय संगीत,नाटक
और कविता,शास्त्र का आदिग्रन्थ माना जाता है।

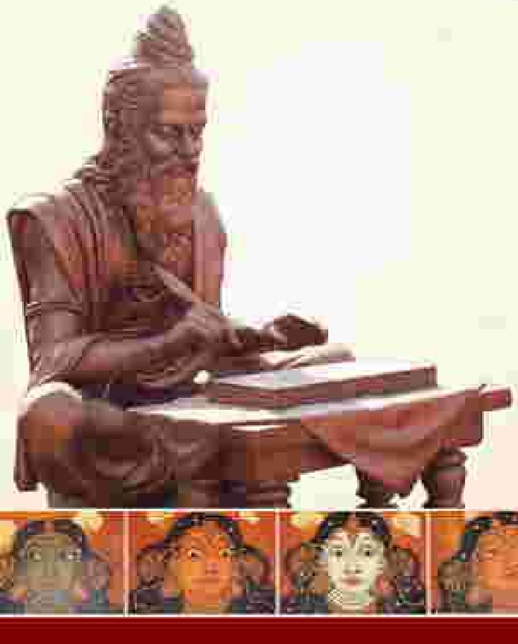

भरत मुनि को 400 वर्ष ईस्वी पूर्व का माना जाता है।
वे नाट्यशास्त्र के गहन जानकार और विद्वान थे।
इनके द्वारा रचित ग्रंथ नाट्य शास्त्र में
नाट्य, संगीत, छंद, अलंकार, रस
आदि सभी का सांगोपांग प्रतिपादन किया गया है।
कहा गया है कि भरतमुनि रचित
प्रथम नाटक 'देवासुर संग्राम' का अभिनय,
देवों की विजय के बाद
इन्द्र की सभा में हुआ था।

आचार्य भरत मुनि ने अपने नाट्यशास्त्र की उत्पत्ति ब्रह्मा से मानी है क्योंकि शंकर ने
ब्रह्मा को तथा ब्रह्मा ने अन्य ऋषियों को काव्यशास्त्र का उपदेश दिया।
विद्वानों का मत है कि भरतमुनि रचित पूरा नाट्यशास्त्र अब उपलब्ध नहीं है।
लेकिन वर्तमान में यह जिस भी रूप में उपलब्ध है, वह भी कम महत्वपूर्ण नहीं है।

।। विज्ञान से संबंधित कुछ हिंदू ग्रंथ ।।

सभी हिंदू ग्रंथों की श्रेष्ठता का आधार आध्यात्म के साथ उनका वैज्ञानिक आधार और दृष्टिकोण है, चाहे वह आध्यात्मिक ग्रंथ हो या आर्थिक, विज्ञान उनमें सूत्रों के रूप में तो कहीं कथाओं या उपमाओं के रूप में मिलता है। इसे समझना गहन अध्ययन का विषय है।

हिंदू ग्रंथों में उल्लेखित तथ्य आधुनिक युग में
विज्ञान के विकास और उन्नति के साथ समझ में आ रहे हैं।

अथर्ववेद आदि ग्रंथों में विज्ञानों के बारे में भी उल्लेख है। परन्तु इनका अध्ययन करके कई तत्ववेत्ता विद्वानों ने कालांतर में अनेक वैज्ञानिक ग्रंथों की रचना की है
वे भारतीय ज्ञान की उत्कृष्टता सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है।
ऐसे अनेक ग्रंथ विशेष रूप से विविध वैज्ञानिक धाराओं जैसे भौतिकी, रसायन, ज्योतिष, चिकित्सा, वनस्पति विज्ञान आदि के लिए समर्पित हैं। जिनमें कई प्रकार की मशीनरी और उपकरण जैसे हवाई जहाज, पनडुब्बी, बैटरी, चुंबकीय उपकरण, दूरबीन, शल्य चिकित्सा उपकरण या कृषि मशीनरी के डिजाइन और निर्माण विधियों का भी वर्णन किया गया है। इनमें कई रसायनों और तत्वों की जानकारी भी मिल सकती है। ये ग्रंथ सौर ऊर्जा और जल विद्युत के साथ-साथ सिंचाई की तकनीक के बारे में भी बात करते हैं।

उदाहरण के लिये ऐसे कुछ ग्रंथ इस प्रकार है।

भौतिकी एवं प्रौद्योगिकी - भारद्वाज विमान शास्त्र, यंत्रर्णव, शिल्प दीपिका, युद्ध जयर्णव, सौर सूक्त, मायमत, दुर्ग विज्ञान, कश्यप शिल्पम, परमाणु शास्त्र, विश्व भेदनी कोष, यंत्र सर्वस्व आदि।

रसायन शास्त्र - पराशर रसकोष , रसार्णव, गोविन्द भगवद्पत का राशृदयतंत्र, सोमदेव का रासरणाकल्प तथा रसेन्द्र चूणमणि तथा गोपालभट्ट का रसेन्द्रसार संग्रह, रसलपान, रसरतनसमु, रसजलनिधि, रसप्रकाश सुधाकर, रेन्द्रकल्पंड्रुम, रसप्रदीप, रसंगल, रस रत्नाकर आदि।

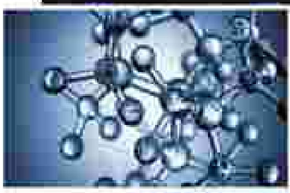

गणित, ज्योतिष और अन्य विषय - लीलावती, शूल्ब सूत्र, शरुतसूत्र, सिद्धांत शिरोमणि, बोधशास्त्र, अश्वघोष, पराशर कृषि संहिता, अगस्त्य संहिता, आदि।

चिकित्सा और औषधि निर्माण - वाघभट्ट का अष्टांग हृदय, चरक संहिता, सुश्रुत संहिता, च्यवन संहिता, गर्भ शास्त्र, शरीर शास्त्र, रक्ताभिसरण शास्त्र, औषधि शास्त्र, आरोग्य मंजरी आदि

इन ग्रंथों में से कुछ की पूरी तो कुछ की आंशिक रूप से पांडुलिपियाँ मिली हैं,
और कुछ का केवल नामोल्लेख ही मिलता है। वर्तमान में कई संस्थाएं ऐसे ग्रंथों के संरक्षण,
पुनरुद्धार और व्याख्या आदि पर काम कर रही हैं।

।। वैदिक योग परम्परा ।।

सामान्य अर्थों में यह ऐसी विधा या विज्ञान है,
जिसके द्वारा आत्मा को परमात्मा से जोड़ा जा सके।
इसीलिये वेद में योगयुक्त जीवन की महिमा गाई गई है।

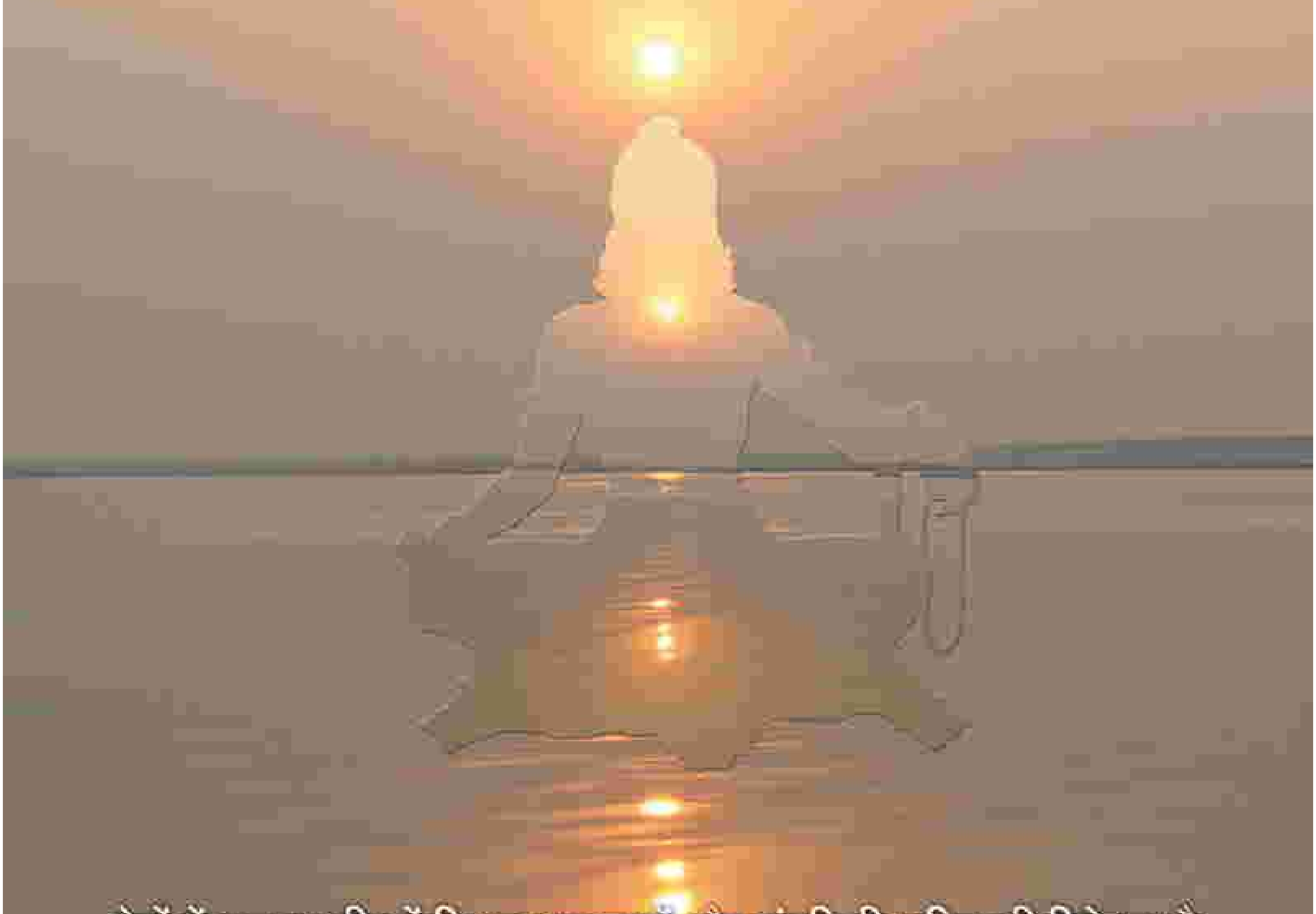

वेदों में मानव शरीर में स्थित आठ चक्रों और कुंडलिनी शक्ति की विवेचना है,
जिनके जागरण से आनंदयुक्त जीवन के साथ ही साथ
समाधि या मुक्ति का मार्ग प्रशस्त हो सकता है।
इसी ज्ञान को महर्षि पतंजलि ने अपने योग सूत्र में विधिवत रूप से
राजयोग या अष्टांग योग के नाम से व्यक्त किया।

वर्तमान में बाबा रामदेव ने इसे आश्रमों से निकाल कर जन सामान्य से जोड़ने में अद्भुत भूमिका निभाई है। माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी के प्रयत्न से 'विश्व योग दिवस' के रूप में इसकी स्वीकार्यता वैदिक विचारधारा की विजय का एक पड़ाव है।

।। योग दिव्य जीवन का आधार ।।

महर्षि पतंजलि ने अपने योग सूत्र में
यम, नियम, आसान, प्राणयाम, ध्यान, धारणा, प्रत्याहार और समाधि
इन आठ अंगों का क्रमानुसार संक्षेप में वर्णन किया है।

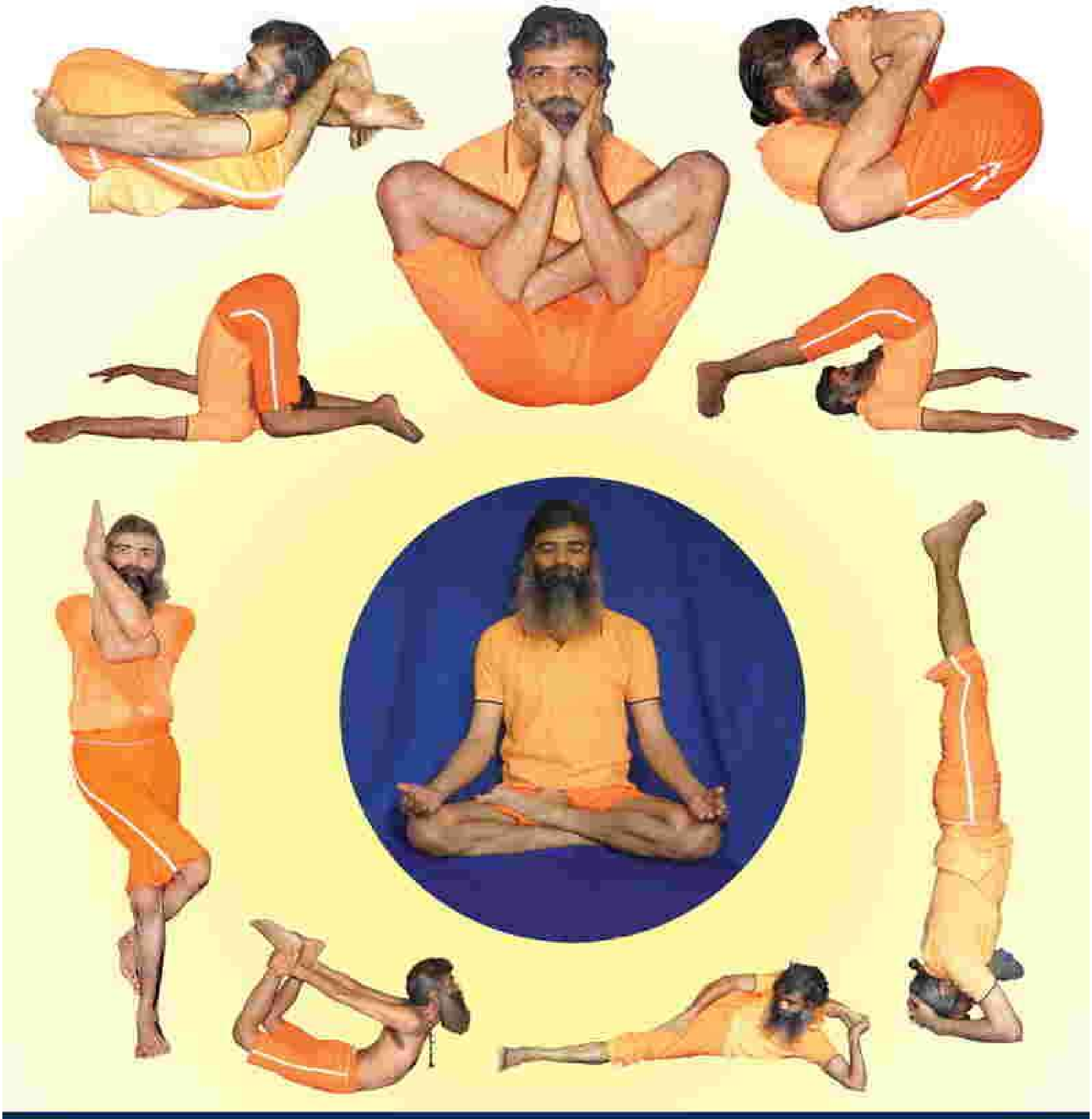

इसी वैदिक विचार पद्धति का विभिन्न पुराणों और भगवान गोरखनाथ आदि के ग्रंथों में वर्णन हैं।
इन ग्रंथों मे विभिन्न प्रकार के आसनों और प्राणायामों का विषद विवेचन किया गया है,
जिनके द्वारा बीमारियों से दूर रहा जा सकता है और बीमार होने पर उनके द्वारा उपचार भी किया जा सकता है।

।। वैदिक देवता ।।

जिन ऋषियों ने प्रकृति के प्रत्येक तत्व में प्रेरित दैवीय शक्ति को पहचाना और उन्हें अलग–अलग देवताओं के रूप में वर्णित किया और सूक्तों की रचना करके उनके प्रति श्रद्धा प्रकट की।

वैदिक ग्रंथों में इंद्र, वरुण, यम, अग्नि, मातरिश्वा एवं मित्र आदि कई देवताओं का वर्णन है। वास्तव में ये एक ही सत्य की विभिन्न अभिव्यक्तियाँ हैं।

इन्ही शक्तियों के भौतिक और आध्यात्मिक लाभ लेने के लिए विभिन्न मन्त्रों और यज्ञादि अनुष्ठानों की व्यवस्था वेदों में वर्णित है।

इसी विविध देवत्व में एकता का मूल सूत्र भी वेदों में ही निहित है।

‘एक सत् विप्रः बहुधा वदन्ति’

(ऋग्वेद – 1 – 164 – 46)

दीर्घतमस ऋषि द्वारा दिया गया यह वैदिक मंत्र वैदिक देवताओं ही नहीं वरन संपूर्ण बहुरंगी भारतीय संस्कृति के एकत्व और समरसता का आधार है।

।। वैदिक देवता की संख्या ।।

प्राचीन भारतीय याज्ञिक विधान के अनुसार प्रत्येक मंत्र का कोई ना कोई देवता होता है।
उन देवताओं को जाननेवाला ही मंत्र के अर्थ को समझ सकता हैं।
आध्यात्मिक दृष्टिकोण से ये सब एक ही परम सत्ता के अलग-अलग रूप हैं।
संहिताओं में देवताओं की संख्या 3339 तथा कहीं 33 (तीन स्थानों के आधार पर) बताई गई है।

ऋग्वेद के प्रत्येक मंडल में क्रमशः अग्नि, इंद्र, आदित्य, वरुण, विश्वेदेवा, पृथ्वी, रूद्र, मरुत, सविता, अश्विनी, सोम, पूषा, आदिति, विष्णु, वायु, मित्रावरुण, सरस्वती, उषा, ऋभु आदि देवी-देवताओं की स्तुतियाँ की गई है। पहले अग्नि फिर इंद्र की और उसके बाद दूसरे देवताओं की स्तुति हैं।

8 वसु, 11 रूद्र, 12 आदित्य, इन्द्र और प्रजापति, इस प्रकार 33 कोटि यानि 33 प्रकार के देवता है। कोटि का एक अर्थ करोड़ भी होता है, इसीलिये जन सामान्य में 33 करोड़ देवताओं की धारणा बन गई।

वैदिक देवताओं में से कुछ के संक्षिप्त विवरण यहां मात्र एक झलक के रूप में प्रस्तुत हैं। देवताओं की संख्या कम नहीं है और उनके स्वरूप को समझना भी सरल नहीं है। मंत्रों में उनके गुण, कर्म और शक्ति आदि के जो विवरण मिलते हैं, उनकी व्याख्या भी भिन्न-भिन्न प्रकार से की जाती है।

।। मानव शरीर देवताओं का धाम ।।

तस्माद्वै विद्वान पुरुषमिदं ब्रह्मेति मन्यते ।
सर्वा ह्यस्मिन्देवता गावो गोष्ठ इवासते ।।

अथर्व ११/८/३२

जिस प्रकार गायें अपने बाड़ें में रहती हैं उसी प्रकार सभी देवता इसी के आश्रय में रहते हैं इसीलिये विद्वान इस पुरुष को बह्म कहते है।

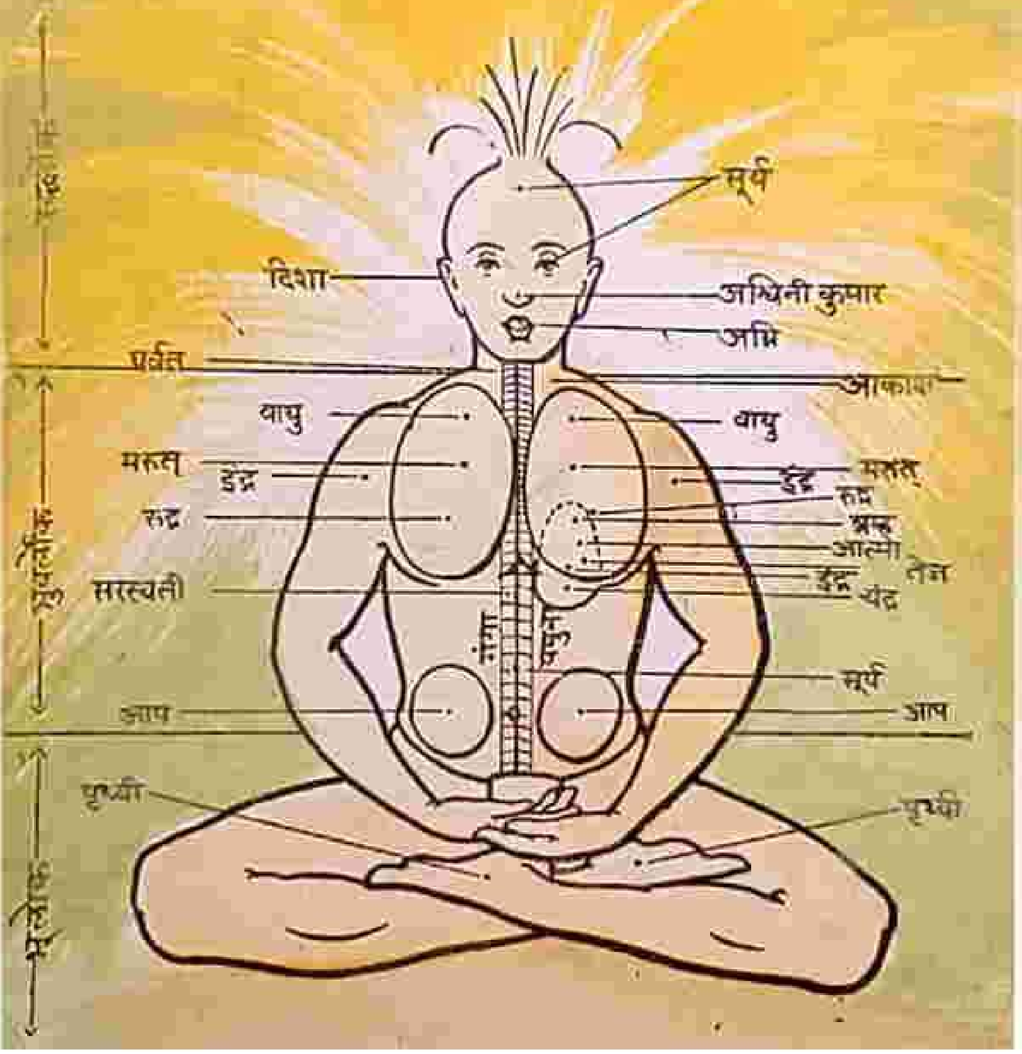

विश्व का संचालन करने वाली जो शक्तियॉ देवता कहलाती है वे मानव शरीर की विभिन्न ग्रंथियों में सूक्ष्म रूप से समाहित हैं। शरीर के उस देवतांश पर मन एकाग्र करने से उस देव शक्ति या गुण का विकास होता है।

जिस तरह प्राणायाम से वायु शक्ति द्वारा प्राण का बल बढ़ता है, सूर्य पर थोड़ा त्राटक करने से नैत्र ज्योति बढ़ती है। उसी विभिन्न चक्रों या ग्रंथी केन्द्रों पर ध्यान केन्द्रित करने से संबंधित देव शक्ति का विकास किया जा सकता है।

।। इन्द्र देवता ।।

इन्द्रो दिव इन्द्र ईशे पृथिव्या,
इन्द्रो अपामिन्द्र इत पर्वतानाम् ।
इन्द्रो वृधामिन्द्र इन्मेधिराणाम्,
इन्द्र क्षेमे योगे हव्य इन्द्र ।। ऋग्वेद १०/८९/१०

इन्द्र द्युलोक का स्वामी है। पृथ्वी, जल और पर्वतों का भी स्वामी है। इन्द्र वृद्ध और बुद्धिमानों का भी स्वामी है। प्राप्त वस्तुओं की रक्षा और नई वस्तुओं की प्राप्ति के लिये इन्द्र की स्तुति करना चाहिये।

ऋग्वेद में इंद्र की विस्तृत स्तुति है। इससे वैदिक देवताओं में इनकी सर्वोत्कृष्टता का अनुमान लगाया जा सकता है। यह ऋग्वैदिक आर्यों के प्रिय राष्ट्रीय देवता माने जाते हैं। मंत्रों में इनको आकाश, अंतरिक्ष, पृथ्वी, और वायु तथा सभी देवों से बड़ा बताया गया है।

एक मंत्र में कहा गया है– हे इंद्र! तुम्हारे सदृश आज तक ना कोई उत्पन्न हुआ है और ना होगा। इंद्र को एकमात्र अकेला शासक कहा गया है।

लेकिन पौराणिक ग्रंथों में इन्द्र को बहुत विकृत रूप में प्रस्तुत किया गया है।

अग्नि देवता

अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम्।
सुवर्णवर्णममलं समिद्धं विश्वतोमुखम्॥

मैं ज्वाजल्यमान अग्निदेव की वन्दना कर रहा हूँ, जो धन धान्य देने वाले हैं। देवों के हविर्भाग को यथास्थान पहुँचा देते हैं। स्वर्ण सी कांतिवाली इनकी ज्वालायें दसों दिशाओं में व्याप्त है। ये पूर्णरूप से अपने तेजोमय रूप में स्थित हैं।

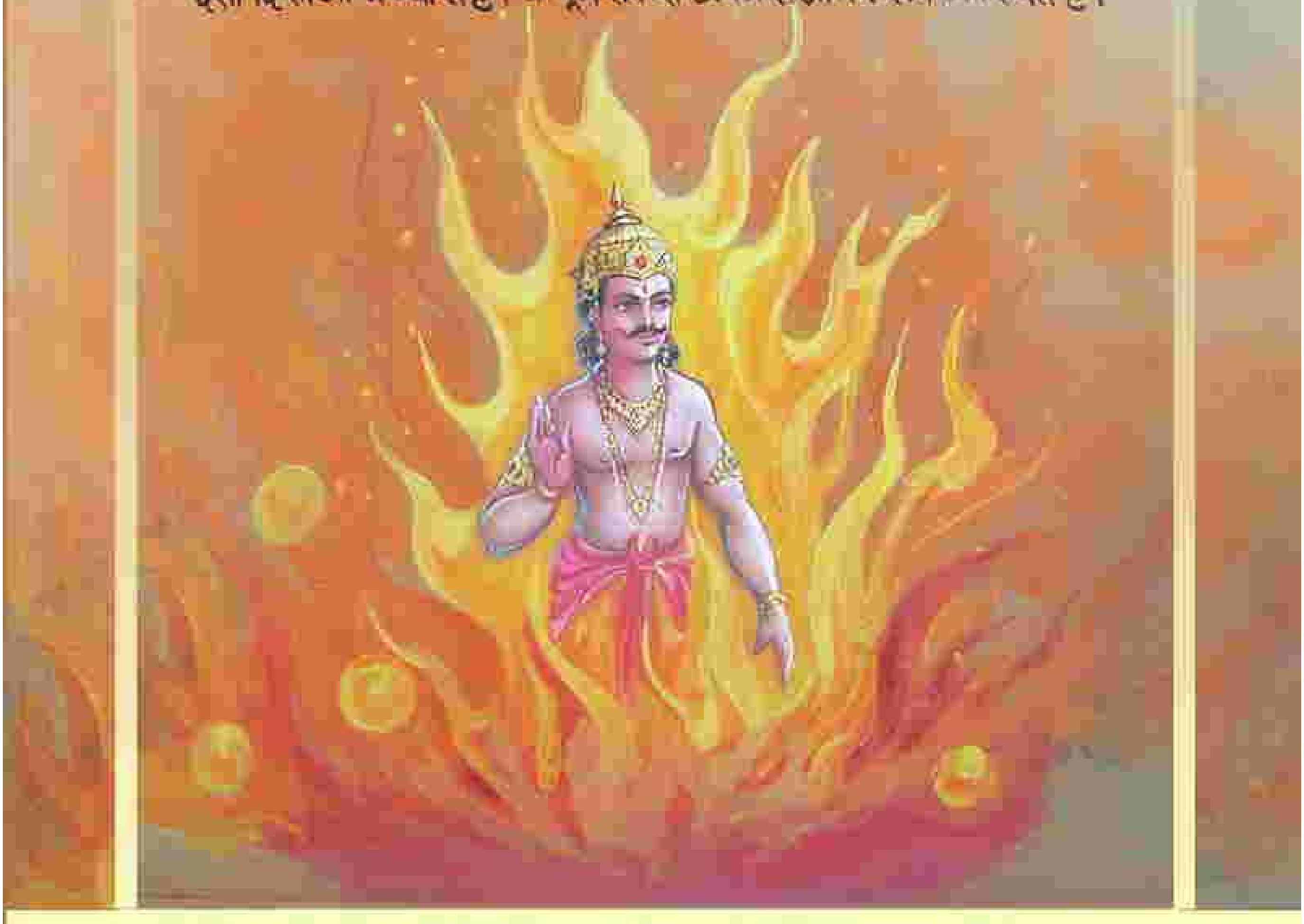

पृथ्वी के स्थानीय देवताओं में अग्नि प्रमुख हैं। यज्ञ से घनिष्ठ संबंध रखने के कारण उनका वैदिक देवताओं में विशिष्ट स्थान है। ऋग्वेद में उन्हें लगभग 200 संपूर्ण सूक्त समर्पित किए गए हैं और अनेक बार दूसरे देवताओं के साथ इनकी सहस्तुतियाँ भी की गई है।

ऋग्वेद का प्रारंभ ही अग्निदेव की स्तुति से होता है।

ॐ अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृतविजम होतारं रत्नधातम।।

इसमें अग्नि को पुरोहित, होता, यज्ञ का देव और ऋत्विज कहा गया है।

ऋगवैदिक ऋषियों ने देवताओं को यज्ञ में लाना और आहुतियों का वहन करना अग्निदेव के प्रमुख कार्य माने हैं।

'अग्नि' यज्ञ संस्कृति की प्राण-भूता है।

प्रत्येक गृहस्थ के घर विधिवत अग्नि का स्थापन किया जाता था।
जिसमें नित्य अग्निहोत्र होता था।
व्यक्ति के अंतिम संस्कार में भी यही 'अखंड अग्नि' ही काम आती थी।

सर्वत्र व्याप्त रहनेवाली इस अग्नि को

"अरणी मंथन"

द्वारा प्राप्त किया जाता था।

हे विद्वान जनों! जैसे घिसी हुई अरणियों से अग्नि उत्पन्न होती हैं
वैसे ही सब पार्थिव द्रव्यों व वायु संबंधी द्रव्यों के घिसने से जो सर्वत्र व्याप्त
हुई विद्युत उत्पन्न होती है वह दूर देशों में समाचार आदि पहुंचाने के व्यवहारों
को सिद्ध कर सकती हैं। इस विद्युत विद्या से गृहस्थी का बड़ा उपकार होता है।
(ऋग्वेद 7.1.1)

"गणानाम् त्वा गणपति हवामहे।
प्रियाणांत्वा प्रियपति हवामहे॥
निधिनाम् त्वा निधिपति हवामहे। वसो मम।"

— शुक्ल यजुर्वेद २३-१९

हे समस्त गणों के स्वामी गणपति, आप प्रियपति यानि समस्त प्रिय पदार्थों के स्वामी हैं। आप ही समस्त निधियों के स्वामी यानि निधिपति हैं। मैं अविद्या से दूर होकर समस्त प्रकृति में व्याप्त आपको जान सकूं, ऐसी प्रार्थना है।

यजुर्वेद के साथ अथर्ववेद में भी गणपति अथवा गणेश की ब्रह्म-रूप में उपासना की गयी है। गणपति को वाणी का देवता तथा 'सत, रज, तम' तीनों गुणों से परे माना गया है। गणपति मनुष्य के मूलाधार चक्र में स्थित रहते हैं। इच्छा, क्रिया और ज्ञान आदि शक्तियों के वे एकमात्र आधार हैं।

कालांतर में भगवान गणेश के नाम से स्वतंत्र संप्रदाय विकसित हुआ। उनके पुराण और दंतकथायें विकसित हो गई। उनके अनेक मंदिर बने। विश्व के अनेक देशों में उनकी मूर्तियाँ अन्य वैदिक देवताओं की अपेक्षा सबसे अधिक मिलती हैं।

भगवान गणेश के मंदिर और उनकी पूजा परम्परा
भारत की प्राचीन गणतंत्र प्रणाली का प्रमाण एवं
वैदिक तथा पौराणिक दोनों धाराओं के समन्वय का सुन्दर उदाहरण है।

।। सूर्य देवता ।।

येतसूर्या ज्योतिषा बाधसे तमो जगच्च विश्वमुदियर्षि भानुना।
तेनास्मद्विश्वामनिरामनाहुतिमपामीवामप दुष्ष्वप्न्य सुव ॥ ऋ.१०.३७.४

हे सूर्य, आप जिस ज्योति से अंधकार का नाश करते हैं, तथा प्रकाश से सारे संसार में स्फूर्ति उत्पन्न करते हैं, उसी से हमारा समग्र अन्न का अभाव यज्ञ का अभाव, रोग तथा कुस्वप्नों के कुप्रभाव दूर कीजिये।

**सौर देवताओं में सूर्य का भौतिक स्वरूप अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट है।
उसे समस्त स्थावर–जंगम की आत्मा कहा गया है।
मानव जाति के लिए सूर्य उद्बोधक बनकर उदित होते हैं।
वह वर्षा करते हैं। जल या आद्रता को ग्रहण करना और फिर उसको वापस देना
सूर्य का प्रधान कर्म है। आध्यात्मिक अर्थ में सूर्य प्रत्यक्ष परमात्मा है।**

मित्र, उषा, सविता, विष्णु और सूर्य, ऋग्वेद के सौरमंडलीय देवता हैं। सूर्य की पोषण–शक्ति के प्रतिनिधि देवता 'पूषा', सूर्य की रक्षण–शक्ति के प्रतिनिधि देवता 'मित्र', प्रेरक–शक्ति के देवता 'सविता' और सूर्य के व्यापनशील एवं क्रियाशील रूप के प्रतिनिधि देवता 'विष्णु' हैं
वही सूर्य आकाश में उदीयमान, प्रकाशप्रदाता मंडलरूप सूर्य है।

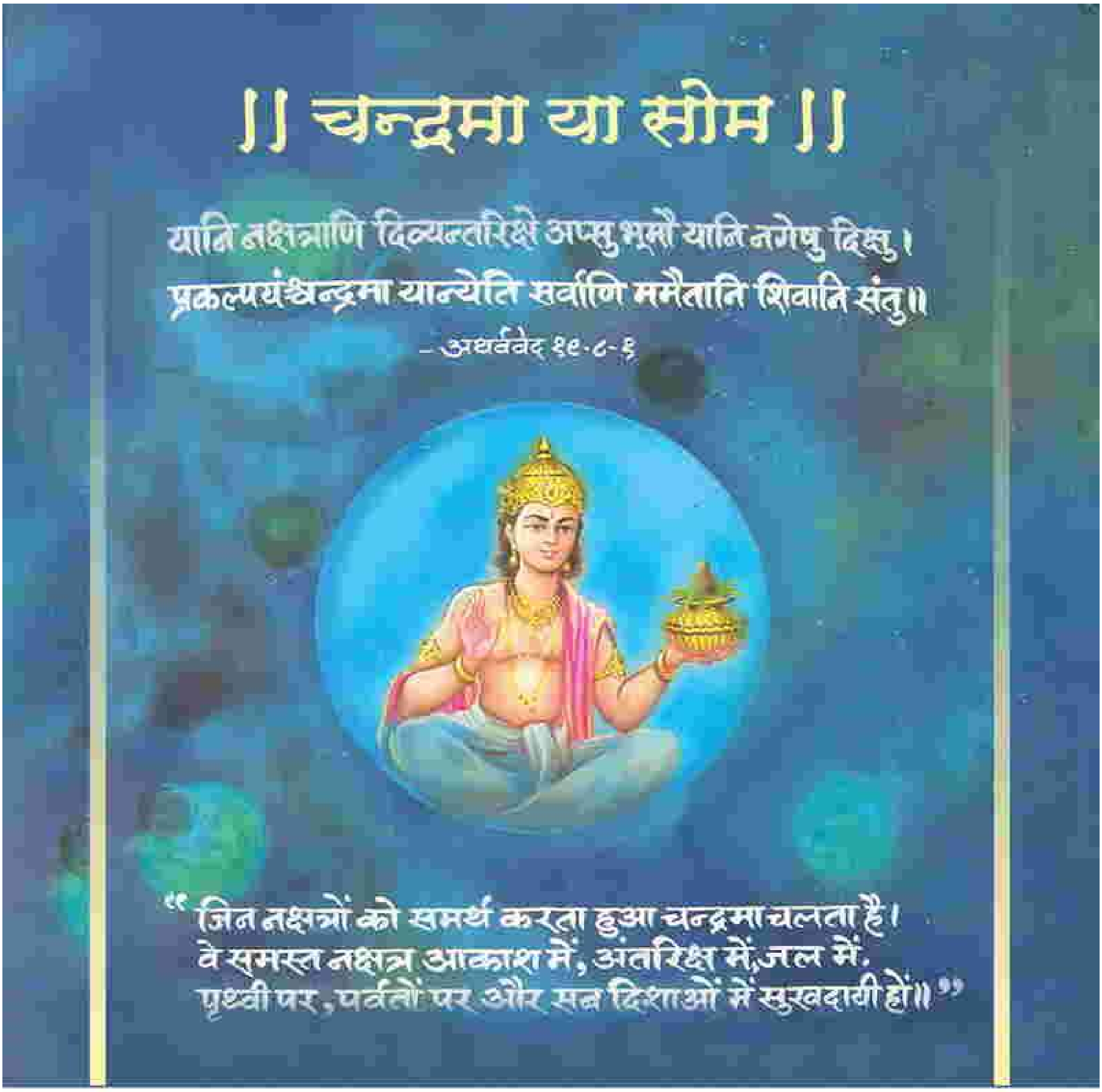

वैदिक धारणा के अनुसार चंद्रमा मन के देवता है।

वे औषधियों के स्वामी है यानि औषधियों को पुष्टि प्रदान करते है।

वे ही समुद्र में उठने वाली हलचलों के कारण है। उन्हें सोम भी कहा जाता है।

उन्हें कलाओं और भावनाओं का देवता माना जाता है।

बाद में अनेक पौराणिक कथानकों में उन्हें अनेक रूपों में चित्रित किया गया है।

वेदों में अनेक स्थानों पर उनकी स्तुति तथा उनसे कल्याण की कामना की गई है।

वैदिक ऋषि ग्रह के रूप में चन्द्रमा से भली–भॉति परिचित थे।

इसीलिये उनकी ये स्तुतियॉ कोरी श्रद्धा न होकर चन्द्रमा के भौतिक और आध्यात्मिक स्वरूप को जानकर उनसे कल्याण के निमित्त वैज्ञानिक व्यवस्था है।

।। मरूत देवता ।।

"उत वात पितासि न उत भ्रातोत नः सखा । स नो जीवातवे कृधि ।
यददो वात ते गृहे ऽ मृतस्य निधिर्हितः । ततो नो देहि जीवसे ।।"

— ऋग्वेद १०/१८६/२-३

हे वायु ! तू हमारा पिता है, भाई है, मित्र है। जीवनदाता है कृपा कर।
तेरे अन्दर जो अमृत्व की निधि है, उसमें से हमारे लिये जीवन दे।

मरुत देवता रूद्र के पुत्र हैं। ऋग्वेद में इनका महत्वपूर्ण स्थान है। अकेले मरूत की स्तुति 33 सूक्तों में हुई है तथा इंद्र, अग्नि और पूषा के साथ भी इनकी कतिपय सूक्तों में स्तुति हुई है। मरुत देवता गणों के रूप में भी वर्णित हुए हैं।

आकाश और पृथ्वी से इनका घनिष्ठ संबंध है यह सुंदर शरीर वाले मनमोहक देवता हैं। कहा गया है कि अबाध गति वाले मरुत अपनी शक्ति से पृथ्वी तथा द्यूलोक के प्राणियों अथवा पदार्थों को कंपित कर देते हैं। मरुतों के प्रधान कार्यों में एक वर्षा करना भी है।

मरूत देवता को बाद में मारूति के नाम से भी पुकारा गया जिनके अवतार मारूतिनंदन श्री हनुमान जी वर्तमान में सर्वाधिक लोकप्रिय हैं।

।। देववैद्य अश्विनीकुमार ।।

युवं ह स्थो भिषजा भेषजेभिरथो ह स्थो रथ्या राथ्येभिः।
अथो ह क्षत्रमधि धत्थ उग्रा यो वां हविष्मान् मनसा ददाश ॥ऋ.१.१५७.६

"हे अश्विनौ, तुम दोनों अपने पास उत्तम औषधियाँ रखने के उत्तम वैद्य हो, उत्तम घोड़े अपने रथ में जोतने के कारण रथी हो, तुम स्वयं उग्रवीर हो। क्षत्रिय मना, जो तुम्हें मनःपूर्वक हवि अर्पण करता है उसकी तुम सहायता करते हो।"

अश्विनौ ये दो देवोंकी एक जोड़ी हैं, जो हमेशा साथ साथ रहते हैं।
ये दोनों वस्तुत: देवों के वैद्य हैं।
इनमें एक औषधि चिकित्सा में कुशल है और दूसरा शल्यचिकित्सा में।
वेदों में इनके चिकित्सा चमत्कारों और विमानों का वर्णन है।
जिनसे ये जल, थल और नभ कहीं भी जाकर लोगों का इलाज करते थे।

इन्होंने च्यवन ऋषिका कायाकल्प करके उनकी वृद्धावस्था दूर की और उसे फिर से तरुण बनाया। इसी प्रकार विश्पला नामक एक राजपुत्री की टांग युद्ध में कट गई थी, तो अश्विनौ ने उस कटी हुई टांग की जगह एक लोहे की टांग लगाकर उसे चलने फिरने योग्य बनाया (ऋग्वेद.1.116.15) इसी प्रकार आंखों का आपरेशन करके अन्धे को दृष्टिवाला बना देने का वर्णन भी ऋग्वेद है। (ऋग्वेद.1.116.16)

।। पृथ्वी माता ।।

माता भूमि पुत्रोऽहम् पृथिव्याः।-अथर्ववेद

"यार्णवेधि सलिलमग्र आसीद्यां मायाभिरन्वचरन्मनीषिणः।
यस्या हृदयं परमे व्योमन्त्सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः।
सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे।" अथर्व १२/१/८

यह पृथ्वी पहले जलरूप थी। इस पृथ्वी पर मनीषी लोग ज्ञानपूर्वक विचरण करते हैं।
पृथ्वी पर विचरण करने वाले इन मनुष्यों का हृदय प्रभु में लीन रहता है।
अथर्ववेद 12.1.8

ऋग्वेद में पृथ्वी का गुणगान आकाश के साथ ही किया जाता है।
इनकी स्तुति ऋग्वेद और अथर्ववेद के सूक्तों में हुई है।
जो पृथ्वी के भौतिक, आध्यात्मिक और जैविक गुणों पर आधारित है।
जैसे –यह पर्वतों के भार को संभालती है। वन्य औषधियों को धारण करती हैं।
यह मही और दृढ़ है। तथा सूर्य का परिभ्रमण करती है।

वेदों में इसे गौ कहकर भी पुकारा गया है।

पौराणिक रूप से इसके इसी भाव का विस्तार कई कथाओं हुआ है।
बाद में पृथ्वी में देवत्व की परिकल्पना का उत्तरोत्तर विकास होता गया है।

।। गौ रूपा धरती माँ ।।

"जनं विभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथ्वी यथौकसम् ।
सहस्त्रंधारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती ॥"

— अथर्ववेद १२/१/४५

*यह पृथ्वी तरह-तरह की वाणी बोलने वाले, विभिन्न धर्मों का आचरण करने वाले,
तथा विभिन्न स्थानों में रहने वाले सभी प्राणियों का अनेक प्रकार से भरण पोषण करती है।
यह मेरे लिये अचल गाय के समान द्रव्य की सहस्त्रों धारायें बहाये।*

पृथ्वी और प्रकृति के बारे में ऋषियों के आध्यात्मिक श्रद्धापूर्ण विचार सुनकर वेदों को कोरी भावना समझने वालों के लिये पृथ्वी के बारे में ही ये वैज्ञानिक विचार अवश्य पढ़ने चाहिये।

यह जल, वायु, अग्नि आदि तत्वों से परिपूर्ण पृथ्वी अंतरिक्ष में गुरुत्वाकर्षण से प्रेरित हो सूर्य के चारों तरफ क्षण-क्षण घूमती है। इसी से दिन-रात, शुक्ल पक्ष व कृष्ण पक्ष, ऋतु और अयन, सूर्य का उत्तरायण और दक्षिणायन होना आदि काल विभाग क्रम से संभव होते हैं।

वैदिक ऋषियों का भाव है। पृथ्वी गौ के समान है।
इसका दोहन करना चाहिये पर निर्दयता से शोषण उचित नहीं।

।। रूद्र देवता ।।

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थु
र्य इमाँल्लोकानीशत ईशनीभिः ।
प्रत्यङ्जनांस्तिष्ठति संचुकोचान्तकाले
संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः ।। - श्वेताश्वतर ३-२

अपनी शक्तियों द्वारा तीनों लोकों पर शासन करने वाले भगवान 'रूद्र' एक ही हैं। इसीलिये विद्वान उन्हें जगत का कारणरूप मानते हैं वे प्रत्येक जीव के भीतर स्थित हैं। समस्त जीवों का निर्माण कर पालन करते हैं, तथा प्रलय में सबको समेट भी लेते हैं।

अंतरिक्ष स्थानीय देवताओं में रुद्र का अपना विशेष स्थान है। इनको ऋग्वेद में तीन सूक्त समर्पित किए गए हैं। अन्य देवताओं के साथ लगभग 50 बार रूद्र का नाम आया है। ऋग्वेद की अपेक्षा यजुर्वेद और अथर्ववेद में रुद्र का महत्व अधिक विकसित हुआ है। यजुर्वेद में इनकी स्तुति में रुद्राध्याय नामक एक पूरा अध्याय है।

उत्तर वैदिक और पौराणिक काल में रूद्र देवता का नाम 'शिव' के रूप में प्रचलित हुआ। रूद्र के मानवीकरण में उनकी बलिष्ठता का विशेष वर्णन हुआ है। रुद्राध्याय में उनका चित्रण एक बलवान सुसज्जित योद्धा के रूप में हुआ है। उपासक ने उनसे निरोगता और कृपा की याचना की है। रुद्र से स्वस्ति कामना की गई है और उनको औषधियों का राजा बताया है।

।। ज्ञानदेवी सरस्वती ।।

हे विद्यादायिनी नदीतमा सरस्वती माता, हमें ज्ञान का प्रकाश दे।
अप्रकट विद्या को प्रकट करके हम संतानों को उत्तम शिक्षा से युक्त कर।
ऋग्वेद 2/4/16-17

'अंबितमे नदितमे देवितमे सरस्वती'

सरस्वती नदी रूपा ज्ञानदेवी माता की तरह हितकारिणी है।

– ऋग्वेद (2.41.16)

सरस्वती सभ्यता का बहुमुखी विकास मुख्यतया इसी सुंदर और शांतिपूर्ण वातावरण में हुआ। यहाँ के निवासी सरस्वती के किनारे तथा अन्य क्षेत्रों में दूर तक फैले गए। ऋग्वेद में सरस्वती नदी का संदर्भ लगभग 50 बार आया है।

यह हिमालय के 'हरि का दून' ग्लेशियर से निकलकर, शिवालिक पर्वत श्रेणियाँ, आदि बद्री, कुरुक्षेत्र, पेहोवा–शतराना, काली वेग, पीलीवंगान, आबूदांचल, सूरतगढ़, बेरीवाल होती हुई अरब सागर में मिलती थी। यह हरा–भरा क्षेत्र कृषि, पशुपालन तथा अन्य व्यवस्थाओं से संपन्न था। यहाँ अनेकों बड़े नगर थे तथा वशिष्ठ, विश्वामित्र जैसे महान ऋषियों के आश्रम थे।

वेदों का विकास इसके तट पर होने के कारण इसे ज्ञान की देवी के रूप में माना जाता रहा। इसके लुप्त होने के बाद गंगा का महत्व बढ़ गया।

।। ज्ञान की जलधारा सरस्वती ।।

वैदिक सरस्वती नदी के कालांतर में लुप्त होने के बाद विदेशी विद्वानों ने पूरे वैदिक साहित्य को केवल कल्पना कहकर नकारने का कुप्रयास किया किन्तु हाल ही में हुए शोध ने इसके भूगर्भ में उपस्थित अस्तित्व को सिद्ध कर दिया।

विद्या की देवी सरस्वती की जिस प्रतिमा को हम सर्वत्र देखाते है वह वास्तव में वेदकालीन नदी सरस्वती का मूर्तिरूप है।

गंगा, यमुना और सरस्वती ये भारत की तीन सर्वाधिक पावन और पूज्य मानी जाती है। गंगा को मुक्ति की नदी के रूप में स्वीकार किया जाता है क्योंकि इसके किनारे सर्वाधिक मुक्ति तीर्थ हैं और कथाओं के अनुसार ये मुक्ति के निमित्त ही धरा पर आई थी। यमुना को भक्ति और कर्म की देवी के रूप में मान्यता मिली क्योकि इसके तट पर भक्ति तीर्थों की भरमार है, और इसके प्रवाह क्षेत्र में गीता का कर्मोपदेश दिया गया। सरस्वती को ज्ञान की देवी इसीलिये कहा जाता है क्योंकि इसके तटवर्ती क्षेत्र में वेद ज्ञान और ग्रंथों का प्रादुर्भाव हुआ।

गंगा नदी में मगर और यमुना नदी में कछुओं की भरमार थी इसलिये मगर और कछुए को उनके वाहन के रूप में मान्यता मिली इसी तरह सरस्वती नदी के किनारे हंस और मौर बहुतायत में पाये जाते है इसलिये इन्हे सरस्वती का वाहन माना जाता है।

।। वरुण देवता ।।

तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः।

—ऋग्वेद १०/९/३

हे जल, तुम अन्न प्राप्ति के लिये उपयोगी हो। तुम पर जीवन तथा नाना प्रकार की औषधियाँ, वनस्पतियाँ एवं अन्न आदि पदार्थ निर्भर हैं। तुम औषधि रूप हो।

वैदिक सूत्रों के अनुसार
वरुण विश्व के नियामक तथा प्रशासक हैं।
वह 'सम्राट' की उपाधि से विभूषित हैं।
उनकी आलौकिक शक्ति का नाम माया है,
जिसके द्वारा वे जगत का संचालन करते हैं।
वरुण के नियम निश्चित हैं और दृढ़ हैं।
वह परम शक्तिशाली हैं, भौतिक अध्यक्ष के रूप में
वरुण से बढ़कर कोई देवता नहीं है।
वे ऋतु के नियामक भी माने जाते हैं।

॥ यम देवता ॥

परेयिवासं प्रवतो महीरनु बहुभ्य पन्थामनुपस्पशानम् ।
वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजाना हविषा दुवस्य ॥ -ऋग्वेद १०-१४-१

हे यजमान, तुम पितरों के राजा यम की उपासना करो। यम उत्तम पुण्य कर्म करने वालों को सुखद स्थान में ले जाने वाले हैं, बहुत से मार्गों के जानने वाले हैं। विस्ववान के पुत्र यम के पास ही मनुष्यों को जाना पड़ता है।

वैदिक काल में यम, ऋषि और मंत्रकर्ता माने जाते थे।
वैदिक काल में यज्ञों में यम की भी पूजा होती थी और उन्हे हवि दिया जाता था।
वे मृत पितरों के अधिपति तथा मरनेवाले लोगों को आश्रय देनेवाला माने जाते हैं।
कालांतर में उन्हें केवल मृत्यु के देवता के रूप में माना जाने लगा।

वे जीवों के शुभाशुभ कर्मों के निर्णायक हैं।
पौराणिक रूप से बारह परम भागवताचार्यों में उनकी गणना होती है
तथा उन्हे दक्षिण दिशा का दिक् पाल माना जाता हैं।
यमराज, महिषवाहन यानि भैंसे पर सवार और पाश तथा दण्डधार हैं।

यम, धर्मराज, मृत्यु, अन्तक, वैवस्वत, काल, सर्वभूतक्षय, औदुम्बर, दघ्न, नील, परमेष्ठी, वृकोदर, चित्र और चित्रगुप्त इन चौदह नामों से यमराज की आराधना होती है।

।। ऊषा देवी ।।

ऊषा को ऋग्वेद में एक शक्तिशाली देवी के रूप में माना जाता है और उनके महत्व का उल्लेख कई अन्य पवित्र ग्रंथों में भी किया गया है। इसमें देवी शक्ति की शक्तियां भी शामिल हैं। उन्हें अन्य वैदिक देवताओं जैसे इन्द्र, वरुण, अग्नि, सूर्य और सोम के समकक्ष माना जाता है।

ऊषा के सूक्त ऋग्वैदिक काव्य के सुंदर उदाहरण हैं।
उषा शब्द का अर्थ है प्रकाशवती, दीप्तिसंपन्ना।
उषा वह युवती है, जो प्रतिदिन उत्पन्न होती है और सदा नूतना बनी रहती है।
उसको 'पुराणि युवती' कहा गया है। ऊषा आते ही सुंदर वाणी के लिए सभी को प्रेरित करती है। ऊषा को रात्रि की छोटी बहन कहा गया है।
आकाश में उत्पन्न होने से इसे आकाश की दुहिता (पुत्री) भी बताया गया है।

ऊषा देवता को मुख्यत: प्रभात की देवी के रूप में माना जाता है पर ऋग्वेद की ऋचाओं में कही-कही सूर्य को ऊषा की पत्नी के रूप में भी दर्शाया गया है (उदाहरणर्थ, ऋग्वेद १.११५.२,/ ७. ७५.५ /९.८४.२)। कुछेक ऋचाओं जैसे आदि में उषा को चन्द्रमा से जोड़कर (ऋग्वेद ४.५१.८ / १.१५७.१) समना और चन्द्ररथों वाला कहा गया है। ऋग्वेद में ही चन्द्रा उषाओं का उल्लेख है।
जो भी हो वैदिक ऋचाओं और पौराणिक कथाओं के अनुसार से वे एक शक्तिशाली प्राकृतिक देव शक्ति हैं।

॥ वास्तुदेव ॥

वास्तोष्पते प्रतरणोन एधि गयस्फानो गोभिरश्वेभिरिन्दो।
अजरासस्ते सख्ये स्याम पितेव पुत्रान् प्रति नो जुषस्व ॥

–ऋ. ७-५४-२

हे वास्तोष्पति देव, हमारे निवास सुन्दर तथा रोगहीन हों, द्विपद तथा चतुष्पदों का कल्याण हो, गायों और घोड़ों के द्वारा समृद्धि बढ़ाओ। सदा जवानी का अनुभव करते हुये हम लोग आपके मित्र बने रहें। पिता के समान आप हम पर प्रीतियुक्त बनें रहें।

वेदों में मिट्टी, पत्थर, धातु आदि पदार्थों से निर्मित होने वाले विभिन्न प्रकार के महलों और घरों का वर्णन है। प्रकृति के विभिन्न तत्वों जैसे सूर्य, हवा, पानी एवं दिशाओं को दृष्टि में रखते हुए मकानों में परिवार सहित सुख शांति से रहने का निर्देश किया गया है। वेदों से ही वास्तु नामक उपवेद का विस्तार हुआ और वास्तु पुरुष की अवधारणा विकसित हुई। पुराणों में इसके बारे में विस्तृत चर्चा की गई है।

वर्तमान में यह वास्तु विज्ञान बहुत प्रचलित हो गया है। घर, कारखाने, कार्यालय और मंदिर आदि के निर्माण में इस विद्या को देश और संप्रदाय आदि के बंधनों से उपर उठकर खुले रूप से स्वीकार किया जा रहा है।

।। दिव्य औषधि सोम ।।

सोम पृथ्वी से संबंधित वनस्पति रूप स्थानीय देवता हैं।
ऋग्वेद में इनकी स्तुति की गई है। सोमयज्ञ वैदिक कर्मकांड का प्रमुख अंग है।
सोमलता और उससे निकाला गया रस
सोमगाथा के आधारभूत तत्व हैं।

सोमलता के बारे में सौम्य मधु, इंदु, रस, उर्मि, आदि शब्दों के
उल्लेखों के अनुसार इसे एक माधुर्यपूर्ण रस बताया गया है।
सोमलता और अनेक तरह से उसके रस निकालने का विवरण विभिन्न वैदिक मंत्रों में
प्राप्त होता है। सोम को वनस्पतियों में राजा आदि उपाधियां दी गई हैं।
यह एक स्वादिष्ट शक्तिदायिनी औषधि और संभवत: आनंद देने वाला पेय है।

धूर्त लोग इसे सुरा बताने का कुत्सित प्रयास करते है। यह सत्य नहीं है,
क्योंकि वेदों में सुरा की निंदा की गई है और सोम को दिव्य जीवनदायी रस बताया गया है।

।। अन्न देवता ।।

"अन्नाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
अन्नेन जातानि जीवन्ति ।अन्नं प्रयन्त्यभिसंविशंतीति ।"
"अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात ।" – तैत्तरीय उपनिषद ३-७/२

अन्न से ही सब प्राणी पैदा होते हैं ।अन्न से ही सब प्राणी जीते हैं ।
और अन्न में ही सब समा जाते हैं। अन्न ही ब्रह्म है , ऐसा जानो ।

मानव शरीर को भौतिक रूप से अन्नमय कोष के रूप में जाना जाता है।
अन्न का सर्वाधिक प्रभाव मन पर होता है और अन्न से निर्मित
शरीर ही मनुष्य के धर्म अर्थ काम और मोक्ष का मूल है।

उपनिषदों में ऋषियों ने जब ब्रम्ह की खोज में
तत्व चिंतन प्रारंभ किया तो सर्वप्रथम उन्हें
ब्रह्म का स्वरूप अन्नरूप में ही दिखाई दिया।
बाद में चिंतन मन, बुद्धि, चित्त और आत्म तत्व की ओर बढ़ा ।

अन्न व्यक्ति को संतुष्टि प्रदान करता है, उसे जीवन देता है। अन्न से बना भोजन
मात्र क्षुधा शांत करने की वस्तु नहीं है, वह प्राणी मात्र को प्रभु का दिया प्रसाद है।
जूठन आदि के रूप में इसका अपमान न हो, इसकी वन्दना के पीछे यह भाव भी है।

।। विराट पुरूष परमात्मा ।।

तस्माद्विराळजायत विराजो अधिपुरुषो ।
सजातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिथो पुरः ॥

ऋग्वेद १०/९०/५

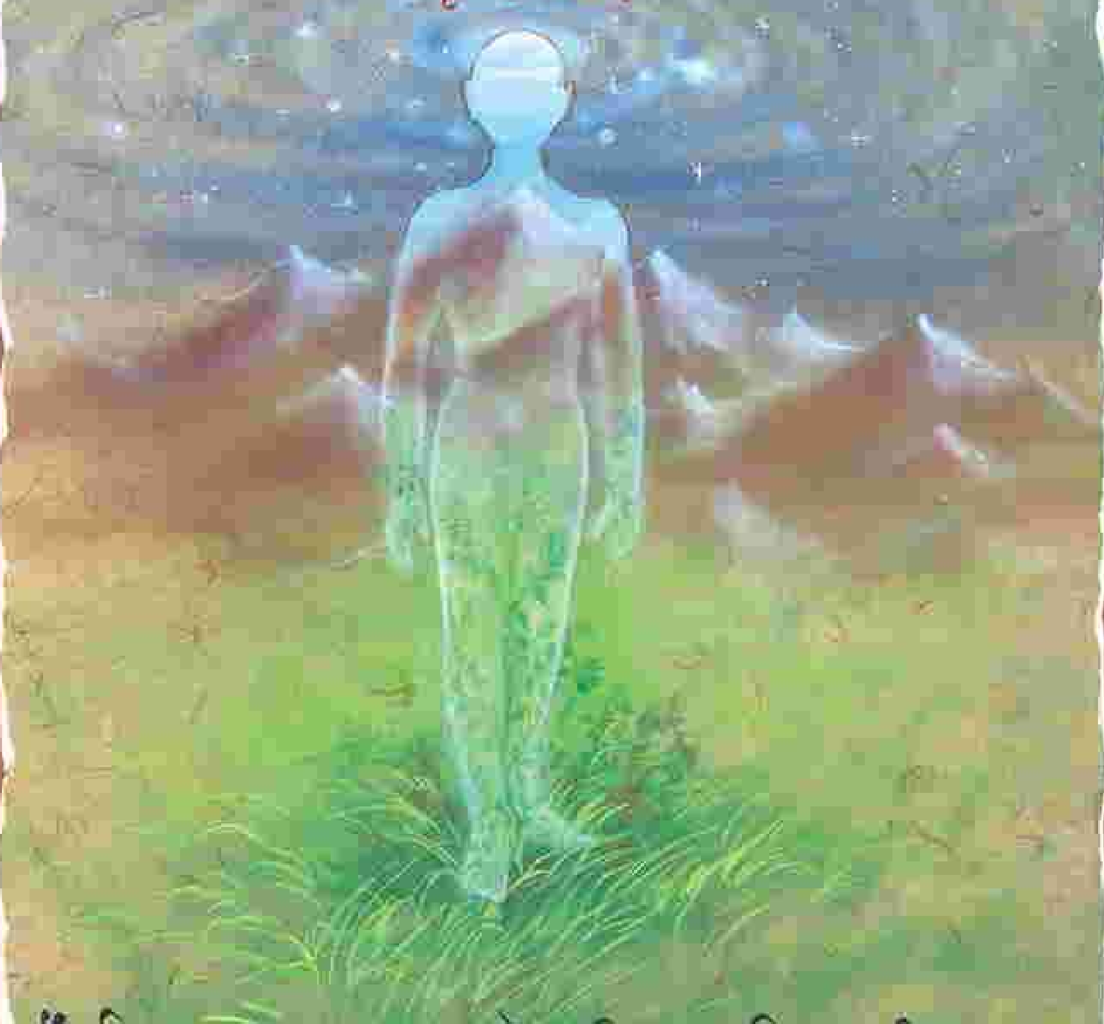

"अधिष्ठाता परम पुरुष परमात्मा से उस विराट (प्रकाशित मूल सृष्टि तत्व) की उत्पत्ति हुई। वह विराट (मूलतत्व) प्रकट होने पर विभाजित होने लगा, उससे भूमि आदि पिण्डों तथा फिर प्राणियों की उत्पत्ति हुई" – ऋ. १०/९०/५

वेदों में अनेक देवताओं की अवधारणा है पर ये सब एक ही बह्मकी शक्ति के अलग–अलग स्वरूप है। उसी ब्रम्ह को विराट पुरूष भी कहा जाता है। माना जाता है उसी एक परमात्मा के संकल्प से इस जड़ और चेतन सृष्टि का आविर्भाव हुआ। वेदों में सर्वत्र उसी परम तत्व की वन्दना की गई है।

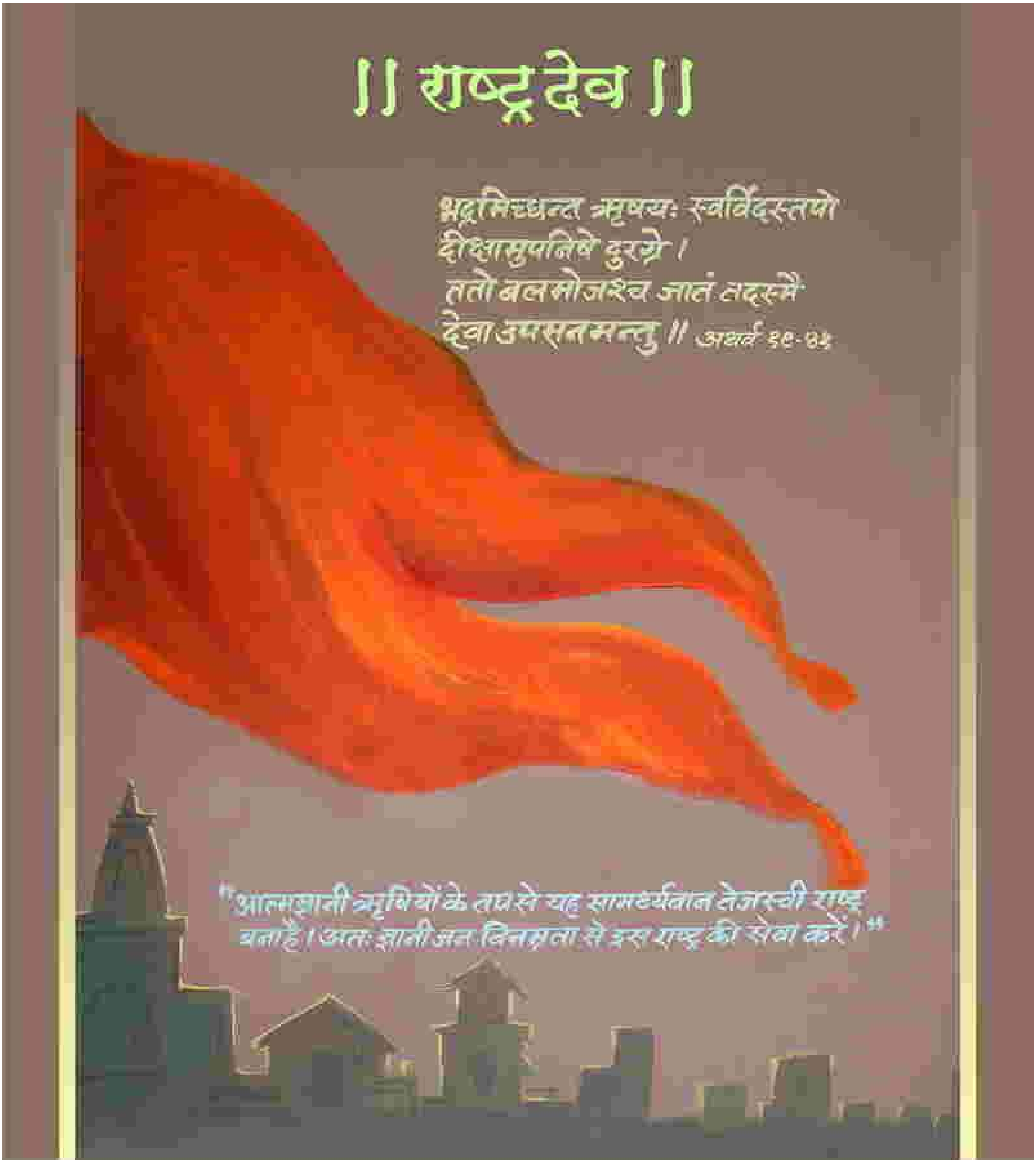

वे अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए हर एक चीज समर्पित करने के लिए तैयार रहते थे। अपनी मातृभूमि के विषयमें उनकी उदात्त भावनाओं का दर्शन अथर्ववेद के काण्ड 12 के प्रथम सूक्त में किया जा सकता है। यह सूक्त वैदिक–राष्ट्रगीत के रूप में जाना जाता है।

वैदिक ऋषि स्पष्ट घोषणा करते हैं कि 'यह भूमि हमारी माता है, हम इसके पुत्र हैं। इसलिए हम इस पर निरोग होकर आनन्द से जीवन व्यतीत करें। साथ ही संकटकालीन स्थिति में इसकी रक्षा करने के लिए स्वयं की बलि देने के लिए भी तैयार रहें।'

|| वैदिक देवस्वरूपों में परिवर्तन ||

वेदों में यज्ञ, ध्यान, जाप, योग, सेवा, प्रकृतिरूप परमात्मा की सेवा के बारे में
बहुत कुछ कहा गया है परन्तु मंदिरों का उल्लेख नहीं मिलता।
प्रकृति एवं जीव जगत की सेवाओं का निर्देश है। वैदिक ऋषियों के अनुसार
स्वस्थ और प्रसन्न रहकर सभी को प्रसन्न रखना ईश्वर की सर्वोपरि भक्ति है।

समय के अविरल प्रवाह में भी हिन्दू मानव हृदय में वैदिक शक्तियों के प्रति श्रद्धा का भाव तो
अक्षुण्ण बना रहा, किन्तु उनके स्वरूप बदलते गये। वैदिक देवताओं के मानवीय स्वरूप
भगवान विष्णु, शिव, शक्ति आदि के रूप में समाज की आस्था के केंद्र बिंदु बन गए।
जैसे रूद्र की अवधारणा भगवान् शिव के रूप में व्याप्त हो गई।
और उपेन्द्र पौराणिक विष्णु के रूप में वैदिक इंद्र से भी ज्यादा लोकप्रिय हो गए।

चार आश्रम

जीवन को धर्म,अर्थ,काम,मोक्ष चारों पुरुषार्थों से समन्वित करके ऋषियों ने ये जीवन पद्धति विकसित की थी।

ब्रह्मचर्य : विद्याध्ययन हेतु
गृहस्थ : निजी उन्नति हेतु
वानप्रस्थ : समाज कल्याण हेतु
संन्यास : आत्म कल्याण हेतु

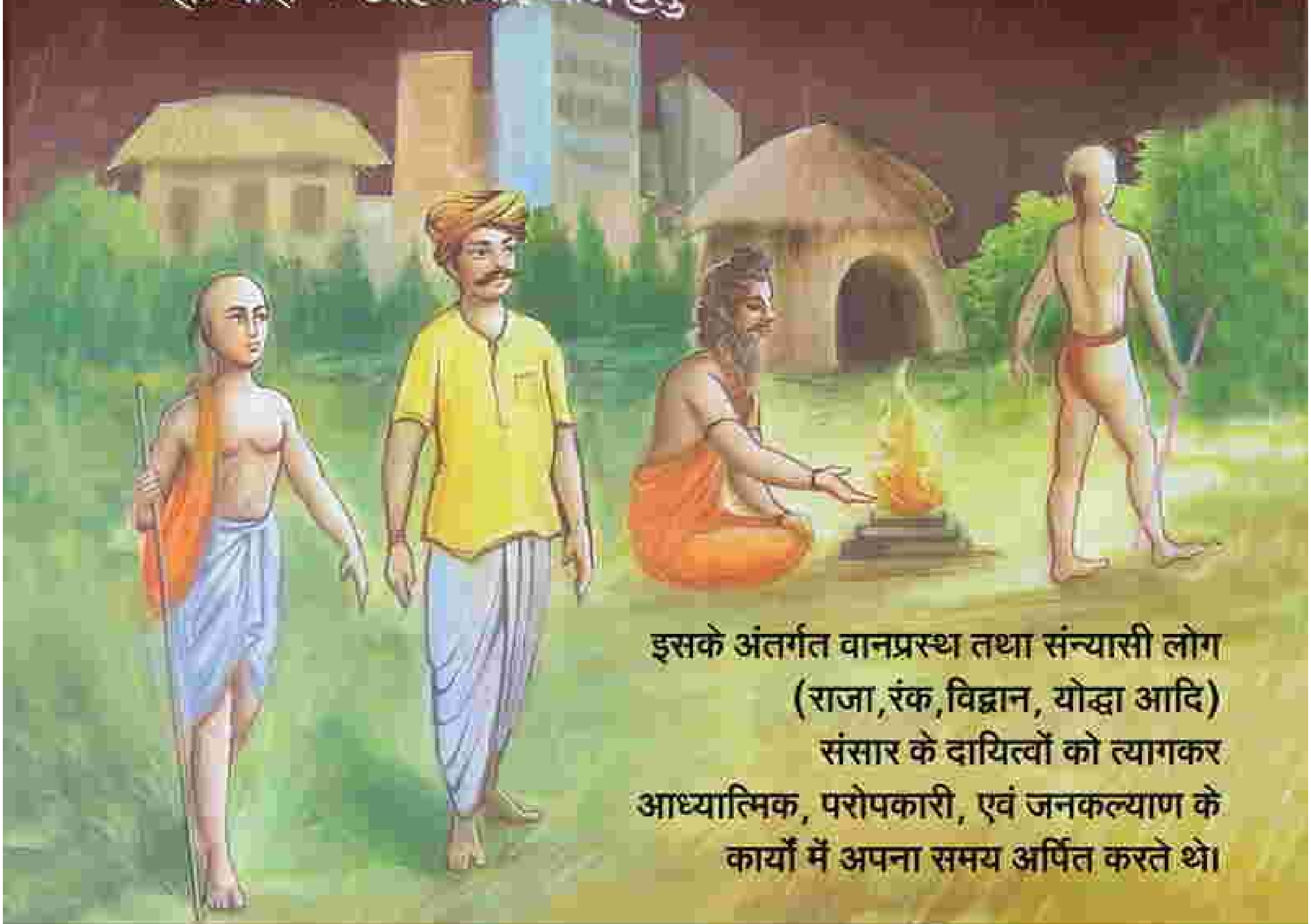

इसके अंतर्गत वानप्रस्थ तथा संन्यासी लोग
(राजा,रंक,विद्वान, योद्धा आदि)
संसार के दायित्वों को त्यागकर
आध्यात्मिक, परोपकारी, एवं जनकल्याण के
कार्यों में अपना समय अर्पित करते थे।

भारतीय संस्कृति में मानव जीवन को 25 – 25 वर्षों की
चार अवस्थाओं (आश्रमों) में बांटा गया था।

1. ब्रह्मचर्य आश्रम– बाल्यावस्था के संस्कारों के साथ–साथ
शिक्षा, प्रशिक्षण, शारीरिक और बौद्धिक क्षमता प्राप्त करने की अवस्था।

2. गृहस्थ आश्रम – पारिवारिक तथा व्यावसायिक जीवन की अवस्था।

3. वानप्रस्थ आश्रम – सांसारिक कार्यों से अवकाश लेकर
धार्मिक, सामाजिक कार्यों में पूर्णतया प्रवृत्त होने की अवस्था।

4. संन्यास – सांसारिक दायित्वों को त्याग कर आध्यात्मिक
तथा परोपकारी जीवन बिताने की अवस्था।

चार वर्ण

मानव पुरूष, राष्ट्र पुरूष तथा विराट पुरूष रूप में

ब्राह्मणोस्य मुखमासी द्बाहू राजन्योंभवत्। मध्यं तदस्य यद्वैश्यः पद्यां शूद्रो अजायत।।

–अथर्ववेद 19/6/6

इस समाज पुरुष का मुख ब्राह्मण-ज्ञानी-है क्षत्रिय इसके बाहु है,
इसका मध्य भाग वैश्य है तथा पांव शूद्र है।

यजुर्वेद के पुरूष सूक्त में सृष्टि के प्रकट होने का एक सुंदर दृष्टांत दिया गया है कि
विराट पुरुष (ब्रह्म) के मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, जंघाओं से वैश्य और पैरों से शूद्र प्रगट हुए।
उसी विराट पुरुष के मन से चंद्रमा, नेत्रों से सूर्य, कर्ण से वायु एवं प्राण
तथा मुख से अग्नि का प्राकट्य हुआ।
उसी विराट पुरुष (यज्ञ पुरुष) की नाभि से अंतरिक्ष, सिर से द्यूलोक, पावों से भूमि
तथा कानों से दिशाएं प्रगट हुई। उसी प्रकार अनेकानेक लोकों की रचना हुई।

– यजुर्वेद पुरुष सूक्त 31. 1 से16

**ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रादि वर्ण मानव शरीर की तरह, राष्ट्र शरीर के अंग हैं
ये वर्ण देश की संचालन व्यवस्था के प्रतीक हैं। इनमें भेदभाव वेद विरूद्ध है।**

।। वैदिक वर्ण व्यवस्था ।।

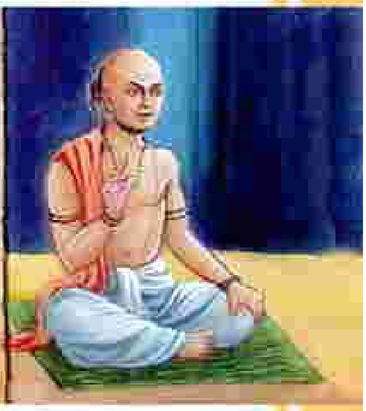

ब्राह्मण

ब्राह्मण का साधारण अर्थ है 'ऋत्विज पुरुष'।
ब्राम्हण ज्ञान का प्रतीक है।
उसकी आजीविका के कर्म निर्धारित किये हैं-
'विधिवत् पढ़ना और पढ़ाना, यज्ञ करना और कराना तथा
दान प्राप्त करना और सुपात्रों को दान देना।'
इन कर्मों के बिना कोई ब्राह्मण-ब्राह्मणी नहीं हो सकता।

क्षत्रिय

राष्ट्र अर्थात् 'क्षेत्र' की रक्षा करने वाले वर्ण को 'क्षत्रिय' कहा गया।
क्षत्रिय एवं राजन्य इन दोनों शब्दों से राज्य अथवा शासन से संबंधित
वर्ग का बोध होता है। राष्ट्र और समाज की रक्षा इनका दायित्व है।

क्षत्रिय वर्ग में राज-परिवार तथा उसका सामंत वर्ग शामिल था।
क्षत्रिय वर्ण के लोग योध्दा तो होते ही थे साथ ही अन्य गुणों का
विकास भी इन्होंने किया... राजऋषि की उपाधियाँ तक भी प्राप्त की।

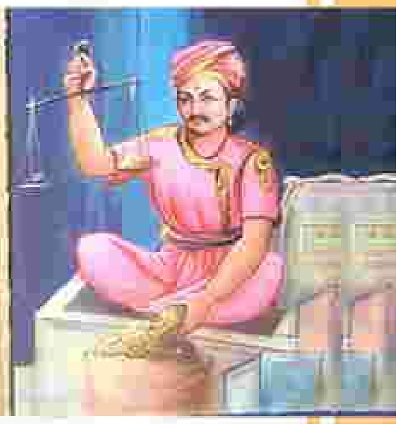

वैश्य

कृषि व्यापार एवं पशुपालन से निर्वाह करनेवाले
व्यक्ति के 'वैश्य' वर्ण के अंतर्गत आते है।
वैश्य की कोई जाति विशेष नहीं थी।
जाति का अर्थ वह समुदाय जिसमें विवाह की परिधि हो
और जो पुश्तैनी पेशा करे।
वस्तुत: वैश्य एक विशाल वर्ग था।

शूद्र

शूद्र शब्द की व्युत्पत्ति है 'शुचा शोच्केन यो द्रवित'
अपने में योग्यता की न्यूनता देखकर शोकातुर होता।
अन्य वर्णों की तरह अपेक्षित योग्यता न होने के कारण,
शारीरिक परिश्रम करनेवाले व्यक्तियों को 'शूद्र' कहा गया है।
यह भी गुण वाचक संज्ञा है, जाति वाचक नहीं। वेद काल में शूद्र
चौथा वर्ण था तथा यह दूसरे वर्गों के अनुचर के रूप में कार्य करता था।

अनेक उदाहरणों से ज्ञात होता है कि वर्ण व्यवस्था मूलत: गुण और कर्म पर आधारित थी
जिसने कालांतर में जाति का रूप ले लिया। इसके आधार पर छुआछूत का उल्लेख वेदों में कहीं नहीं है।

।। गुरूकुल व्यवस्था ।।

आश्रम अथवा गुरुकुल शिक्षा उच्चस्तरीय शिक्षा एवं अनुसंधान का कार्य मुख्यत: ऋषियों के आश्रमों में होता था जिन्हें गुरुकुल कहा जाता था। इस प्रकार के आश्रम अध्यात्म, शिक्षा तथा अन्वेषण के केंद्र भी होते थे।

उनकी आवश्यकता के अनुसार राजा भूमि का पर्याप्त क्षेत्र एवं अन्य सुविधाएँ उपलब्ध कराते थे। यथासंभव प्रजा भी इन संस्थाओं को सहयोग/सहायता प्रदान कराती थी।

प्रारंभिक स्तर की शिक्षा पूरी करने के उपरांत अधिकांश छात्र ऋषियों के आश्रमों में जाकर वही रहते हुए शिक्षा ग्रहण करते थे। साधारणतया आश्रम में प्रवेश की उम्र 15 वर्ष होती थी तथा शिक्षा काल 7 वर्ष का होता था। कई आश्रमों पर शिष्यों की संख्या देढ़ –दो हजार से भी ऊपर होती थी। उसी के अनुसार आश्रमों में शिक्षा, अन्वेषण एवं निवास संबंधी सुविधाएं विकसित की जाती थीं। शिक्षा के विभिन्न विभागों के उदाहरण–

1. अग्निस्थान – हवन, यज्ञ, पूजा, कर्मकांड आदि। 2. ब्रह्मस्थान – वेद विभाग,
3. विष्णु स्थान– राजनीतिशास्त्र विभाग. 4. महेंद्र – सैन्य एवं युद्धभ्यास विभाग
5. विवस्वतस्थान – ज्योतिष, नक्षत्र, अंतरिक्ष विज्ञान विभाग। 6. सोमस्थान – वनस्पति शास्त्र विभाग
7. गरूड़ स्थान – यात्रा वाहन आदि का विभाग 8.कार्तिकेय स्थान – सुरक्षा सतर्कता आदि का विभाग

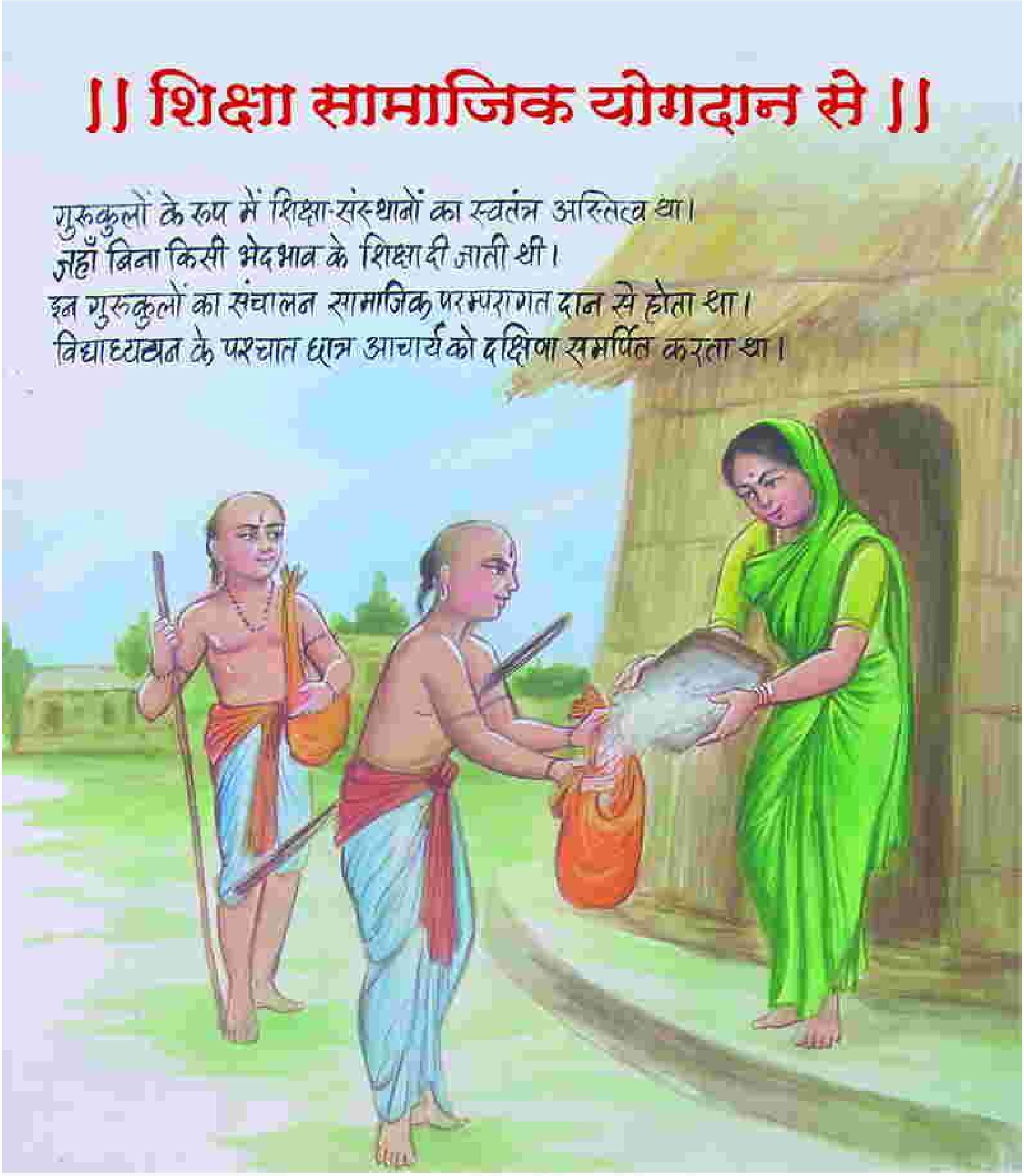

प्रारंभिक शिक्षा

भारत में वैदिक काल से प्रारंभिक एवं उच्चतम दोनों शिक्षाएं नि:शुल्क थीं। प्रारंभिक स्तर पर लगभग 5 साल की आयु के बच्चे स्थानीय ब्राह्मणों के घर जाकर शिक्षा ग्रहण करते थे। शिक्षा नि:शुल्क थी किंतु विद्यार्थी गुरू के घर अथवा आश्रम का अधिकांश कार्य करते थे।

वर्तमान की तरह का भेदभाव वैदिक गुरुकुलों में देखने को नहीं मिलता था। मुगलों के आक्रमणों तथा अंग्रेजी षड्यंत्र के तहत यह प्रणाली मिटा दी गई और राज्याश्रित मैकाले प्रणाली देश पर लाद दी गई।

।। राजा के कर्तव्य ।।

"ध्रुवोच्युतः प्र मृणीहि शत्रुन्छत्रूयतोऽधरान पादयस्व ।
सर्वादिशः संमनसः सध्रीची र्ध्रुवायः ते समितिः कल्पतामिहं ।।"
—अथर्ववेद ६/८८/३

"सब दिशाओं में रहनेवाली प्रजा तुझे ही
राष्ट्राध्यक्ष के स्थान पर रखने की इच्छा करे ।
यह राष्ट्र तुझसे अधःपतित न हो ।
राष्ट्र तुझसे दूर न हो ।
राष्ट्र के शत्रुओं के समान
जिनके आचरण हों, उन्हें गिरा दे ।
शत्रुओं का नाश कर ।"

राजा आदि पुरुषों को चाहिए कि अनपढ़ो एवं दरिद्रों को भी अच्छी शिक्षा देकर विद्वान और धनाढ्य बनाएं, तथा इन सब में सहिष्णुता और प्रगतिशील भावना बढ़ाकर परस्पर उन्नति करावें, जिससे समाज सुखी एवं संपन्न हो। (ऋग्वेद.7.1.20 से 25)

प्रजावर्ग राजा को अपने धन एवं आय का यथोचित कर चुकावे। राजा प्रजाओं की रक्षा करने के लिए सिंह, शूकर आदि जंगली जीवों तथा डाकू, चोर, उठाईगीरो, आदि दुष्टजनों को दण्ड से वश में करें तथा प्रजा के सांसारिक एवं धार्मिक कार्यों में सुरक्षा एवं प्रोत्साहन प्रदान करें। (यजुर्वेद 6.6 अथर्ववेद 11. 5. 16/ 12.1. 36, 46, 49)

राजा और श्रेष्ठजन न्यायासन पर विराजकर अन्याय और पक्षपात त्यागकर, न्याय करके प्रजाओं के प्रिय होवें। (ऋग्वेद 5.26.9)

।। राजा के कर्तव्य ।।

जैसे परमेश्वर अवश्य रूप से सबकी सुनता है और कर्मानुकूल धनादि पदार्थ देता है, इसी प्रकार राजा को चाहिए कि स्वयं एवं गुप्तचरों द्वारा देश-विदेश की सारी स्थिति एवं प्रजा की समस्याओं और भावनाओं से अवगत होता रहे।

(सामवेद 3.12.5)

युद्ध-कुशल सेनापति और राजा अपनी सेना का व्यूह ऐसा करें जिससे उसकी सेना वायु और अग्नि, बिजली और जल के प्रयोग वाले अस्त्र, शस्त्र, विमान, रथ, नौकादि के बल से शत्रु सेना को अंगभंग करके सर्वथा हराकर भगा दे।

(अथर्ववेद 3.1.6)

वेदकाल में राजा सर्वशक्तिमान होता था पर वह मदांध या निरंकुश न हो जाये इसके लिये राजगुरू की व्यवस्था रहती थी। उसके और विद्वत मंत्री परिषद की सहमति से ही राजा राज्य करता था।

बाद में वेदात्तर काल में राजनीति के इन्ही सूत्रों का विस्तार करके राजनीति और नीतिशास्त्र के अनेकों ग्रंथों की रचना हुई। विदुर नीति, शुक्रनीति आदि ग्रंथ विकसित हुए।

दो हजार वर्ष प्राचीन ग्रंथ चाणक्य नीति इन अनेक ग्रंथों का साररूप है जिसमें राजा-प्रजा के संबंध, कर व्यवस्था, गुप्तचर व्यवस्था और दण्ड विधान आदि का विस्तृत विवरण है।

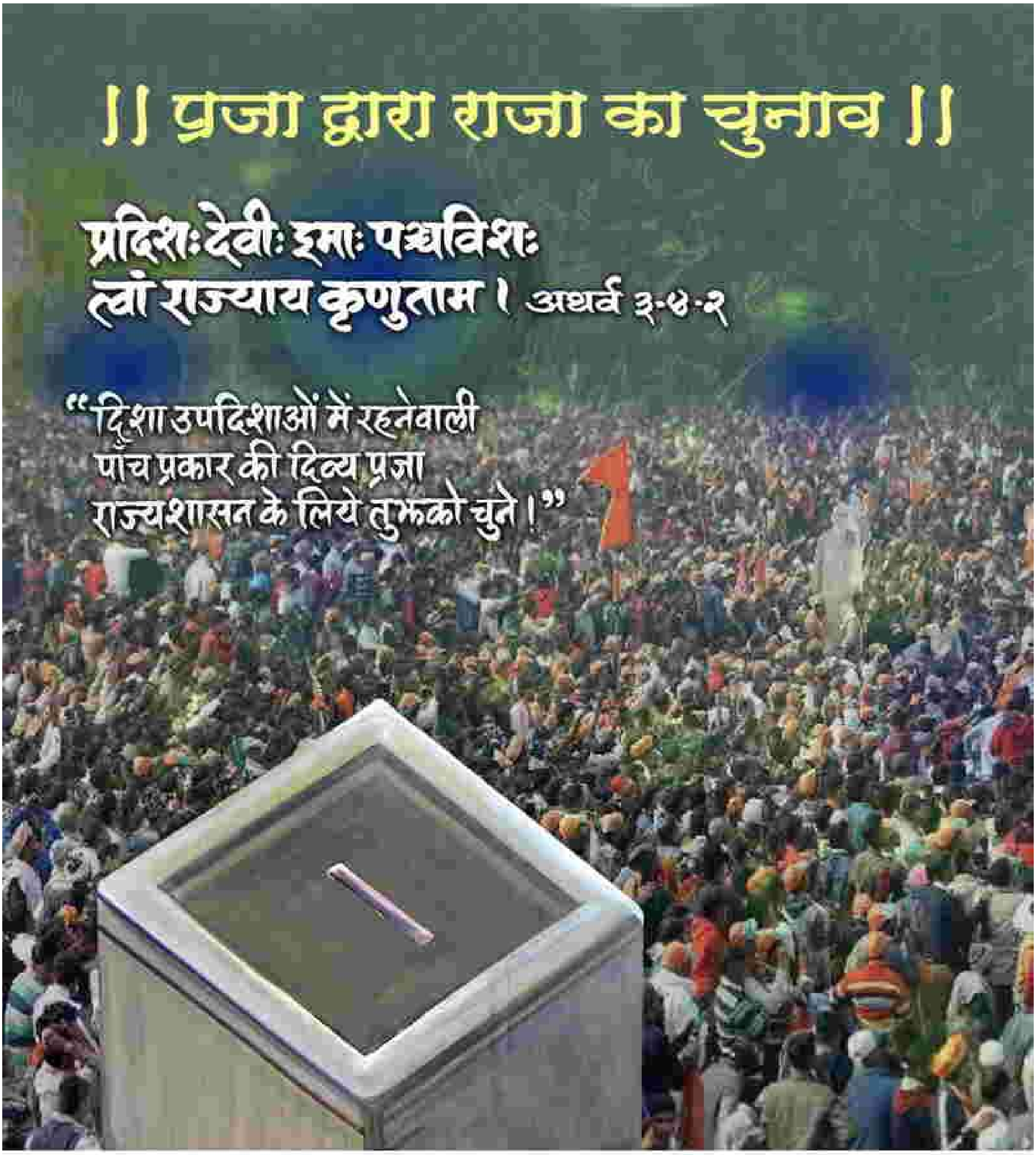

प्रजावर्ग को चाहिये कि राजगद्दी के लिए ऐसे पुरुष का वरण करें जो कि विचारों को सुनें, देखें, शक्तिशाली और दृढ़-व्यवहार हो, तथा जो राजभक्तों का सेवनीय और सबका रक्षक हो।
(सामवेद १.७०९)

वेदों में अनेक स्थानों पर गुणवान, शीलवान और शक्ति सम्पन्न व्यक्ति को राजा चुनने के बारे में उल्लेख मिलता है। इस प्रकार के मंत्रों से सिद्ध होता है कि वैदिक काल में वंशानुगत राजतंत्र के साथ-साथ प्रजातंत्र की परम्परा भी विद्यमान थी। गण परम्परा और उसके प्रधान गणपति की पूजा से भी गणतंत्र यही भाव प्रकट होता है।

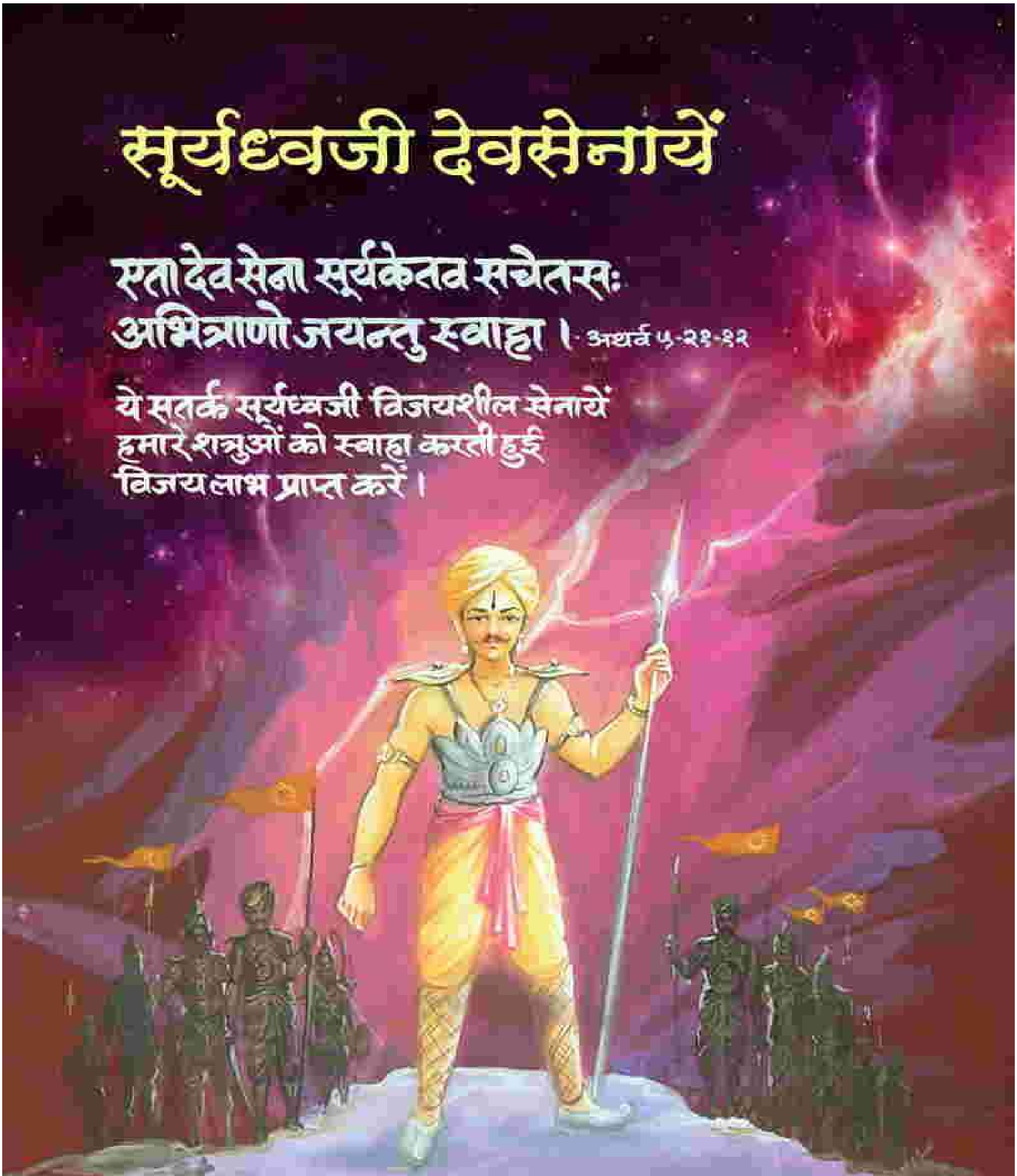

ऋग्वेद एवं अथर्ववेद में अनेक जगह सेना और सैन्य व्यवस्थाओं के बारे में वर्णन है। सेनायें उत्साहपूर्वक रण में भाग लें, इसके लिये अनेक प्रकार के मंत्र वर्णित है। दुंदुभी, नगाड़े, शंखा आदि रण–वाद्यों के साथ इन मंत्रों के उच्चारण से सैनिकों में उत्साह का संचार होता था।

श्रीपाद दामोदर सातवलेकर जी ने वैदिक सैन्य व्यवस्था पक्ष का बहुत विशद वर्णन अपने वैदिक व्याख्यानों में किया है।

।। जुआ और सुरा की निंदा ।।

न स स्वो दक्षो वरुण ध्रुतिः। सा सुरा मन्युर्विभीदको अचित्तिः
(ऋग्वेद 7-86-6)

मनुष्य का केवल अपना मन ही उसे पथ भ्रष्ट नहीं करता।
अपितु सुरापान करने (शराब पीने), क्रोध करने, जुआ खेलने
तथा असावधान रहने से भी मनुष्य पाप के गढ्ढे में गिर जाता है।

ऋग्वेद में एक पूरा अक्ष सूक्त (10-34) जुए की बुराईयां बताने के लिए है।
उसमे जुए के पासों को अंगारों के समान हानिकारक बताया गया है
इसी आधार पर वेदोत्तर ग्रंथों में कहा गया है
'यह जुआ अब से पहले कल्प में
महान् शत्रुता पैदा करने वाला देखा गया है।
इसलिये बुद्धिमान् मनुष्य
हंसी मजाक में भी
जुआ न खेले'

वितंडावादी लोग वैदिक सोमरस को शराब बताकर सुरापान को वैदिक परम्परा बताया करते हैं। जबकि वेदों में सुरा का स्पष्ट निषेध किया गया है और सोमरस को दिव्य गुणकारी औषधि कहा गया है।

औषधिः सोमः सुनोतेः यदेनमभिषुण्वन्ति। (निरुक्त 11-2-2)
सोम एक औषधि होती है जिसे कूट-पीस कर तथा निचोड़कर रस निकाला जाता है।

।। वैदिक दण्ड व्यवस्था ।।

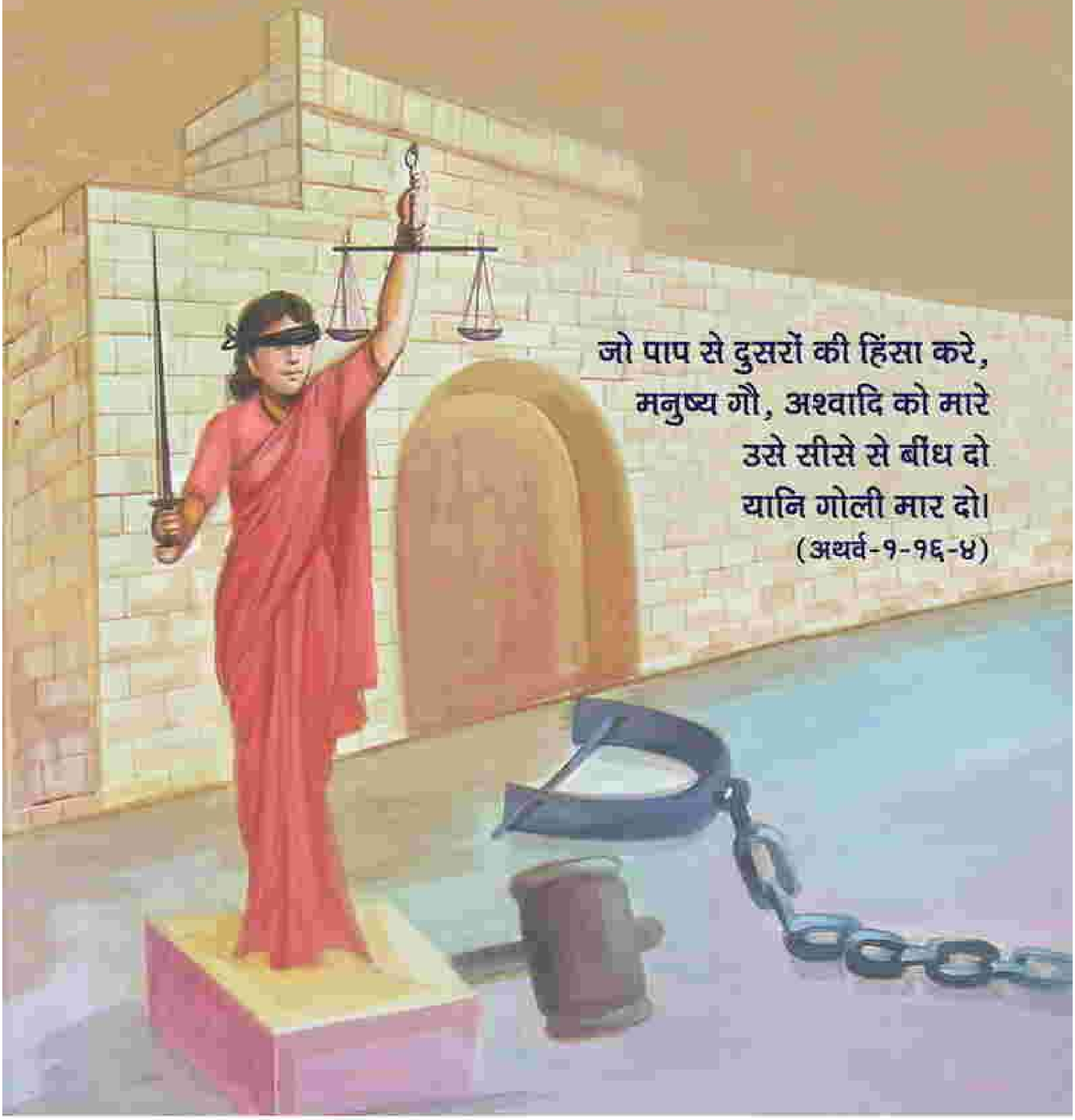

वेदों में सामाजिक व्यवस्था के सुसंचालन हेतु जहाँ प्रत्येक अधिकार एवं कर्तव्य की घोषणा की है। वहीं सामाजिक मर्यादाओं का उल्लंघन करके व्यभिचार एवं हिंसा द्वारा समाज को कष्ट पहुँचाने और नशीले पदार्थो का व्यापार करने वाले दुष्ट व्यक्तियों को कठोर दण्ड देने की आज्ञा भी दी है।

व्यभिचारी, असंयमी या बालात्कारी पुरुष को शल्य एवं औषधि आदि से नपुंसक बनाने तथा काला बाजारी के लिये भी कड़े दण्ड की व्यवस्था वेदों में है।

।। यज्ञ की उदात्त भावना ।।

'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म'

-शतपथ ब्राह्मण (1/7/1/5)

यज्ञ से सृष्टि के समस्त जीव-जंतु वृक्ष-वनस्पति पोषण प्राप्त करते हैं।
यज्ञ में जो कुछ होमा जाता है, वह अग्नि के संपर्क से वायुभूत हो जाता है, जिसे समस्त प्राणी श्वास-प्रश्वास की प्रक्रिया से ग्रहण करते हैं। वृक्ष-वनस्पति भी उसके सूक्ष्म अंश को ग्रहण करते हैं।

यही बात श्रीमद्भवतगीता (3/14) में दूसरे ढंग से कही गई है-
'यज्ञ से संतुष्ट हुए देवता पर्जन्य (प्राण) की वर्षा करते हैं, जिससे धरती के सभी जीवधारियों का ही नहीं अपितु वृक्ष-वनस्पतियों आदि का भी पोषण होता है।'

मनुस्मृति के अनुसार वेदाध्ययन-ज्ञानविस्तार ब्रह्म-यज्ञ है, तर्पण पितृ-यज्ञ है, होमादि कर्म देव-यज्ञ है, बलिवैश्वदेवादि कर्म भूत-यज्ञ है तथा अतिथि आदि की सेवा मनुष्य-यज्ञ है।

।। यज्ञ का गहरा भावार्थ ।।

यज्ञकुण्ड में स्वाहा के उच्चारण के साथ
पुष्टिवर्धक पदार्थों का हवन यह यज्ञ का भौतिक स्वरूप है।

यास्क आदि ऋषियों के अनुसार यज्ञ का अर्थ है -

देवपूजा, संगतिकरण और दान

हम सर्वरूपों मे बिखरे ब्रम्ह की आराधना करें,
प्रकृति व अन्य जीव जगत के साथ संगति बैठायें तथा
औरों के हित तें जो कुछ अच्छा है उसे समर्पित करें, यही सच्चा यज्ञ है।

।। यज्ञमयी वैदिक संस्कृति ।।

मनसस्पत इमं नो दिवि देवषु यज्ञम ।
स्वाहा दिवि स्वाहा पृथिव्यां स्वाहान्तरिक्षे
स्वाहा वाते धां स्वाहा ।

– अथर्ववेद ७/९७/८

हे मन पर अधिकार रखनेवाले यजमान । तुम जो यज्ञ करो उसे
देवों के लिये समर्पित करो, उसका समर्पण पृथ्वी, द्युलोक और
अंतरिक्ष में स्थित सबके लिये होवे ।

'इदम् न मम्'

'स्व -आ - हा' अपना कहने योग्य जो जो पदार्थ है,
उनका जगत की भलाई के लिये
'इदं न मम्' यानि 'यह मेरा नहीं है'
कहकर श्रद्धा से समर्पण करना, यही यज्ञ की मूल भावना है।

दूसरी महत्वपूर्ण भावना यह भी है कि प्रकृति या जगत के कल्याण के लिये किया जाने वाला कर्म भी स्वयं के लिये ही है। क्योकि मनुष्य चराचर जगत का ही अविभाज्य अंग है। जगत की हर गतिविधि का प्रभाव उसका अंग होने के नाते अंततः उस पर ही पड़ेगा।

|| इदम् न मम् -ये मेरा नहीं ||

विश्व की समस्त समस्याओं के मूल में
या तो अनियन्त्रित भोगवाद की कामना है या
मैं और मेरेपन वाली अहंकार की भावना।
यज्ञ के समय प्रिय पदार्थों को जब 'स्वाहा' कहकर अग्नि में
समर्पित करने के बाद 'इदम् न मम्' बोला जाता है।
ये प्रकृति के प्रति समर्पण
और मोह तथा अहं से मुक्ति की भावना का प्रतीक है।

विश्व के प्रमुख मजहबी ग्रंथों की मान्यता है कि परमात्मा प्रकृति से अलग है
उसने मनुष्य को प्रकृति का स्वामी बनाया है तथा सभी को
उसके उपभोग के लिये ही निर्मित किया है।

इसके विपरीत वेदों में कहा गया है कि सम्पूर्ण प्रकृति परमात्मा का ही स्वरूप है
और मनुष्य इसकी एक सामान्य इकाई है।
उसी त्याग भाव से इसका उचित उपभोग करना चाहिये,

।। वैदिक वस्त्राभूषण ।।

वस्त्र बुनने की क्रिया का उपमात्मक रुप वेदों में मिलता है।
मुनिजन मृगचर्म या धूसरित वस्त्र पहनते थे।
उनी वस्त्रों का भी चलन था।
राजा, नर्तकियाँ आदि तड़क भड़कदार जरी-बूटे से कढ़ी हुई
एवं सैनिक आदि अपनी निर्धारित पोषाक पहनते थे।
कहीं कहीं चमड़े के वस्त्र भी प्रयोग में लाये जाते थे।
स्वर्ण, रजत आदि धातुओं एवं मोती इत्यादि से
विभिन्न आभूषण बनाये जाते थे।

समुद्र से मोती निकाले जाते थे। सज्जा के लिए पुष्प मालाओं का भी प्रयोग किया जाता था।

विभिन्न प्रकार के रत्नों और बहुमूल्य धातुओं का उल्लेख वेदों में है।
इनका उपयोग सज्जा में भी किया जाता था।
चिकित्सा, यंत्र तथा रसायन विज्ञान में भी
भस्म, दवा और विद्युत आदि के निर्माण में इनका प्रयोग होता था।

अथर्व 2. 13.2-3

।। उत्सव प्रिय वैदिक समाज ।।

वेदकालीन समाज शुष्क न होकर आनंद से भरा था।
गोपाष्टमी, यज्ञ, युद्ध, फसल आगमन आदि अवसरों पर
मिलजुलकर आनंद बाँटा जाता था।

वेदों में नृत्य, संगीत, काव्य आदि का विषद उल्लेख है। देवपूजा,यज्ञ, जन्म, विवाह आदि पर घरों एवं राज्य सभाओं में इन कलाओं का प्रयोग होता था।
जीवन को रसमय बनाने के लिये जनजीवन में त्यौहारों का प्रचलन उस समय था।

इन अवसरों पर विभिन्न प्रकार के सामुहिक आयोजन होते थे।
जिनमें सज्जा,मनोरंजन किया जाता था एवं और सुस्वादु भोजन बनाया जाता था।
बाद में इसी परम्परा ने बदलते हुऐ धार्मिक रूप से विभिन्न त्यौहारों का रूप ले लिया।

।। वैदिक अन्न एवं खान-पान ।।

अणु, अम्ब, उपवाक, कल्याण, खालकुल, खाल्व, गर्मुट,
गविधुका, गोधूम (गेहूँ), तण्डुल (चावल) तिर्थ, तुष,
तेल, धाना, धान्य, नाम्ब, निवार (जंगली चावल)
पलाव (तुष), प्रियांगु, प्लाशुक (चावल), मशूष्य
(मसूर), यव, ब्रीहि (चावल) शाली (चावल) श्यामक,
शक्तु (सत्तु) शस्यधान आदि अनेकों प्रकार के
अन्नादि का उल्लेख वेदों में मिलता हैं।
आर्यों का मुख्य भोजन दूध, दही, घृत,
मधु एवं उपरोक्त अन्न आदि थे।
–ऋग्वेद 10.1. 2 / 1. 110. 2 / 8. 59. 2

मांस भक्षण का सर्वथा निषेध वेदों में है।

आर्यों का प्रिय पेय 'सोम' था।
यह सुरा जैसा कोई नशीला पदार्थ नहीं ....वरन् कोई पौष्टिक रस था।
–ऋग्वेद – 9.5.1–5 / 1.108. 1–7
सोम को अमृत के समान पवित्र एवं दिव्य औषधि माना गया है।
परन्तु वर्तमान में इसके बारे में आधिकारिक जानकारी उपलब्ध नहीं है।

खाने पीने की परम्परा हर संस्कृति में होती है
किन्तु वैदिक समाज को इन सबसे अलग करने वाली विशेषता है,
उनकी धार्मिक और सामाजिक एकता की भावना।
खाने के पूर्व अन्य पशु–पक्षियों के लिये बलि भाग देना,
अतिथियों को भोजन करवाना और फिर
अन्न को देवता मानकर
प्रार्थना पूर्वक भोजन करना,
यह वैदिक परम्परा प्रतीत होती है।

किसान अन्नोपज में से निश्चित हिस्सा कर, हविष्य एवं ' के रूप में राजा,
देवताओं और यथायोग्य प्रतिफल के रूप में समाज के अन्य वर्गों को देता था।
वेद का व्यवहारिक रूप से अनुशीलन करने वाले कई विद्वानों के अनुसार
देवता हिमालय क्षेत्र में रहते थे उनके बहुविधि सहयोग के बदले उन्हे
उपज का जो भाग समर्पित किया जाता था वह उनका हविष्यान्न कहलाता था।

।। नर-नारी समान नहीं पूरक ।।

तैत्तरीय उपनिषद के अनुसार वेदों ने नर–नारी के बीच भेदभाव को नकारते हुए उन्हे एक दूसरे का पूरक माना है। वेद उन्हें घर की सम्राज्ञी कहते हैं और देश की शासक, पृथ्वी की सम्राज्ञी तक बनने का अधिकार भी देते हैं। वैवाहिक पुरूष को यज्ञ में पत्नी के बिना अयोग्य माना जाता है।

वैदिक मान्यता है कि नर नारी समान नहीं हैं
ये एक दूसरे के पूरक है।
जो कार्य नारी कुशलता से कर सकती है
वो पुरूष के लिये मुश्किल हैं और जो कार्य पुरूष
कर सकता है वे नारी के लिये मुश्किल हैं।
दोनो मिलकर पूर्णता को प्राप्त होते है।
यही धारणा पौराणिक काल में
अर्धनारीश्वर के रूप में चित्रित हुई।

वर्तमान में प्रगतिशीलता का नारा देकर नर नारी की समानता की वकालात की जाती है। जिसका विकृत रूप वर्तमान में भोगवाद और परिवार विखंडन के रूप में दिखाई दे रहा है।

।। वेदों में महिला शिक्षा ।।

वेदकाल में कई ब्रह्मवादिनी ऋषिकायें हुई हैं।
बालकों के गुरुकुल की भाँति ये ब्रह्मवादिनी ऋषिकायें अपने आश्रमों में
बालिकाओं को विभिन्न विषयों की शिक्षायें देती थी।

वेद मंत्रों में ऐसी अनेक विद्वान तथा ब्रह्मवादिनी, सती, विद्वान और वीर महिलाओं का उल्लेख है
ऋषि पत्नियाँ आश्रमों की व्यवस्था संचालन में अपने पतियों का हाथ बँटाती थी।
घर से दूर जंगल में रह रहे नन्हें बालकों को इनके होते माँ की कमी का अहसास नहीं होता था।
परन्तु इस व्यवस्था के अतिरिक्त कई नारियों का बौद्धिक और बल की दृष्टि से
स्वतंत्र महत्व मिलता है। वे युद्ध या बौद्धिक गोष्ठियों में भी खुलकर भाग लेती थी।
मुगल काल के पहले तक इस प्रकार के अनेक उदाहरण इतिहास में भी मिलते है।

।। स्त्रियों की सामाजिक स्थिति ।।

कन्या का पालन पोषण पुत्रवत् होता था।
पुत्रों के समान पुत्रियों को भी शिक्षा दी जाती थी।
स्त्रियों का यथोचित आदर था।
उन्हें घर का आभूषण कहा जाता था।
पति अपने बहुत से कार्यों में
पत्नि से परामर्श लेता था।

वेद कालीन स्त्रियाँ
बालकों एवम परिवार के
लालन पोषण एवं
घरेलु कार्यो के अतिरिक्त
सिलाई, बुनाई, कढ़ाई
आदि भी करती थी।
स्त्रियों के विद्यालय होते थे।
वे वेदपाठन यज्ञादि कर्म करती थीं।

नारियों द्वारा पुरुषों से शास्त्रार्थ करने के भी प्रमाण मिलते है। पर्दाप्रथा नहीं थी। कन्या अपना वर स्वयं भी चुनती थी। आवश्यकता पड़ने पर अपवाद स्वरूप उनके युद्ध में जाने का भी उल्लेख मिलता है।

अथर्व 11-5-18// ऋग. 3-53-3 ,4/ 5-43-15

।। वीर महिला योद्धायें ।।

अमूःपारे पृदाक्व स्त्रिषप्ता निर्जरायवः। अथर्व १/२७/१

केंचुली से निकली हुई इक्कीस सर्पिणियों के समान ये सेनायें हैं।

दनु ,सरस्वती, वृत्रध्नि,
मुद्गलानी विश्पला आदि
अनेक वीर नारियां
इसके उदाहरण है।

वेदों में वीर अनेक
महिला योद्धाओं का वर्णन है ।
जो प्रमाण है कि
महिलाओं को भी
सैनिक शिक्षा दी जाती थी।

नमुचि असुर ने तो एक स्त्री सेना का गठन किया था।
वैदिक परम्परा के अनुसार महिलाओं द्वारा युद्ध करना आम परम्परा नहीं थी,
लेकिन आत्म रक्षा और आवश्यकता पड़ने पर राष्ट्र रक्षा के लिए महिलाओं शस्त्र उठायें,
ये वैदिक आज्ञा भी थी और सामाजिक मान्यता भी।

ऋग्वेद के 1- 112- 10-11 / 1-118 -8 / 1-116 - 15 / 10- 39-8 / 5-30 -9 उदाहरणों से ये स्पष्ट होता है ।

महिलायें, बालकों के लालन-पालन गृहकार्य, कृषि कार्यों में सहायता और
कलात्मक कार्य मूल रूप से करें परन्तु आवश्यकता होने पर असहाय की भांति
पुरूष वर्ग का मुँह न देखें यह वैदिक भावना है।

।। समस्त प्राणियों के प्रति मित्र दृष्टि ।।

"मित्रस्य अहम् चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।" यजुर्वेद ३६-१८

सब प्राणी मुझे मित्र की दृष्टि से देखें। मैं भी सब प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखूँ। हमारी परस्पर मित्र दृष्टि बनी रहे।

वेदों में मात्र मनुष्य ही नहीं, समस्त पशु–पक्षी और वृक्ष आदि जड़–चेतन सभी के लिये मंगलकामना की गई है। न केवल गाय, अश्व या अन्य पालतू वरन वन्य प्राणियों के प्रति मानवों की मित्र दृष्टि रहे, इसका निर्देश किया है। इस संबंध में अनेक मंत्र वेदों में है। बाद में अनेक पूर्वाग्रही व्याख्याकारों ने मंत्रों का अर्थ विकृत करके यज्ञों में पशुओं के लिये बलि या कर्तव्य को पशु हिंसा को जोड़ दिया।

॥ यथा पिंडे तथा ब्रह्माण्डे ॥

"इस मानव शरीर में जो ब्रह्म को देखते हैं, वे परमेश्वर जान सकते हैं"

— अथर्ववेद १०-७-१७

वैदिक ऋषियों ने सृष्टि के गूढ़ रहस्य शायद इसी आधार पर ध्यान की तुरीय अवस्था में जाने। तुरीय अवस्था में पहुँचने पर कुछ भी अनजाना नहीं रहता। वेद इसी अंतर्यात्रा का निर्देश करते हैं।

जो ब्रह्मांड की व्यवस्था है वही शरीर की है। इसी तथ्य को आधार बनाकर वैदिक ऋषियों ने शरीर को ही प्रयोगशाला मानते हुए सृष्टि के अबूझ रहस्यों को समझा और बताया।

अणु, परमाणु, बिजली, यंत्रों से चालित वाहन, तथा अंतरिक्ष के बारे में आश्चर्यजनक ज्ञान, जैसे पृथ्वी और चंद्रमा सूर्य के टुकड़े हैं, वह गुरुत्वाकर्षण से अपने स्थानों पर स्थापित हैं तथा सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाते हैं। ऐसे अनेक सत्य इस अनोखी विधि से जो सत्य खोजे गये, वे सब आधुनिक विज्ञान पर खरे हैं। अनेक सत्य अभी भी इस विज्ञान से परे हैं और शायद परे ही रहें !

।। वर्षा विज्ञान ।।

‘जल से पूर्ण तरंगें समुद्र से उठती हैं।
सूर्य और वायु के द्वारा यह सूक्ष्म जल वाष्प को प्राप्त होती हैं।
घृततेज अर्थात् जल का यह गुप्त प्रभाव दिव्य शक्ति धारकर
आहुति रुप होकर अंतरिक्ष में परिपक्व होता है।
सूर्य की सेचन शक्ति के कारण वाष्प
आकाश में बँधा रहता है।’

जितना जल सूर्य से छिन्न-भिन्न होकर पवन के साथ मेघ मंडल को जाता है
यह सब जल मेघरूप हो जाता है। जब मेघ के जल का सैलाब अत्यंत बढ़ता है
तब मेघ घनी-घनी घटाओं के रूप में पृथ्वी पर जल बरसाता है।
इस प्रकार यह जल-मेघ का चक्र चलता रहता है।

(ऋग्वेद 1.94.46 से 48 / 1.32.8)

निकामे निकामे पर्जयन्यो वर्षतु

वर्षा का पूरा विज्ञान वैदिक ऋषियों को ज्ञात था। इसके लिए वेदों में ‘अपवर्षण यज्ञ’
का उल्लेख आया है। वर्षा को यज्ञ से जोड़ना मात्र भक्ति या प्रार्थना नही थी।
यह एक विशेष वैज्ञानिक पद्धति थी, जिसके द्वारा वर्षा की जा सकती थी
और अतिवृष्टि या अनावृष्टि को नियंत्रित किया जा सकता था।

वर्तमान समय में कुछ संस्थायें इस विषय में अनुसंधान कर रही हैं
जिसके सकारात्मक वैज्ञानिक परिणाम भी सामने आ रहे हैं।

।। वेदों में धातु विज्ञान ।।

'विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी'
— अथर्ववेद १२-१-६

Vishvambhrā Vasudhāni pratistā hiranyagarbho... Atharv. 12-1-6

भूमि से खनिज अयस्क निकालने, उसे धातु का रूप दिये जाने, विभिन्न आकारों में ढालने, कच्चे लोहे को फौलाद बनाने जैसे धातु विज्ञान के अनेक संकेत वेद में उल्लेखित हैं।

वैदिक ऋषिगण जहाँ आध्यात्म और साहित्यिक विद्या के जानकार थी वहीं उन्हे धरती के गर्भ में छिपे विभिन्न धातुओ की जानकारी थी। सोना, लोहा, चाँदी, जस्ता, तांबा, सीसा आदि धातुओं का नाम वेदों में वर्णित है।

वैदिक युग में इन धातुओं का प्रयोग सिद्ध करता है कि इन धातुओं को जमीन से अयस्क के रूप में निकालकर उन्हे विभिन्न रासायनिक विधियों से शुद्ध करने, विभिन्न धातुओं को मिश्रित करके नई धातु बनाने और आवश्यकतानुसार उन्हें विविध आकार में ढलने की कला और विज्ञान में वैदिक मानव प्रवीण थे।

वैदिक ग्रंथों में इनका नामोल्लेख मिलता है लेकिन वेदोत्तर ग्रंथों में इसकी सम्पूर्ण विधि और उपयोग का ज्ञान प्राप्त होता है।

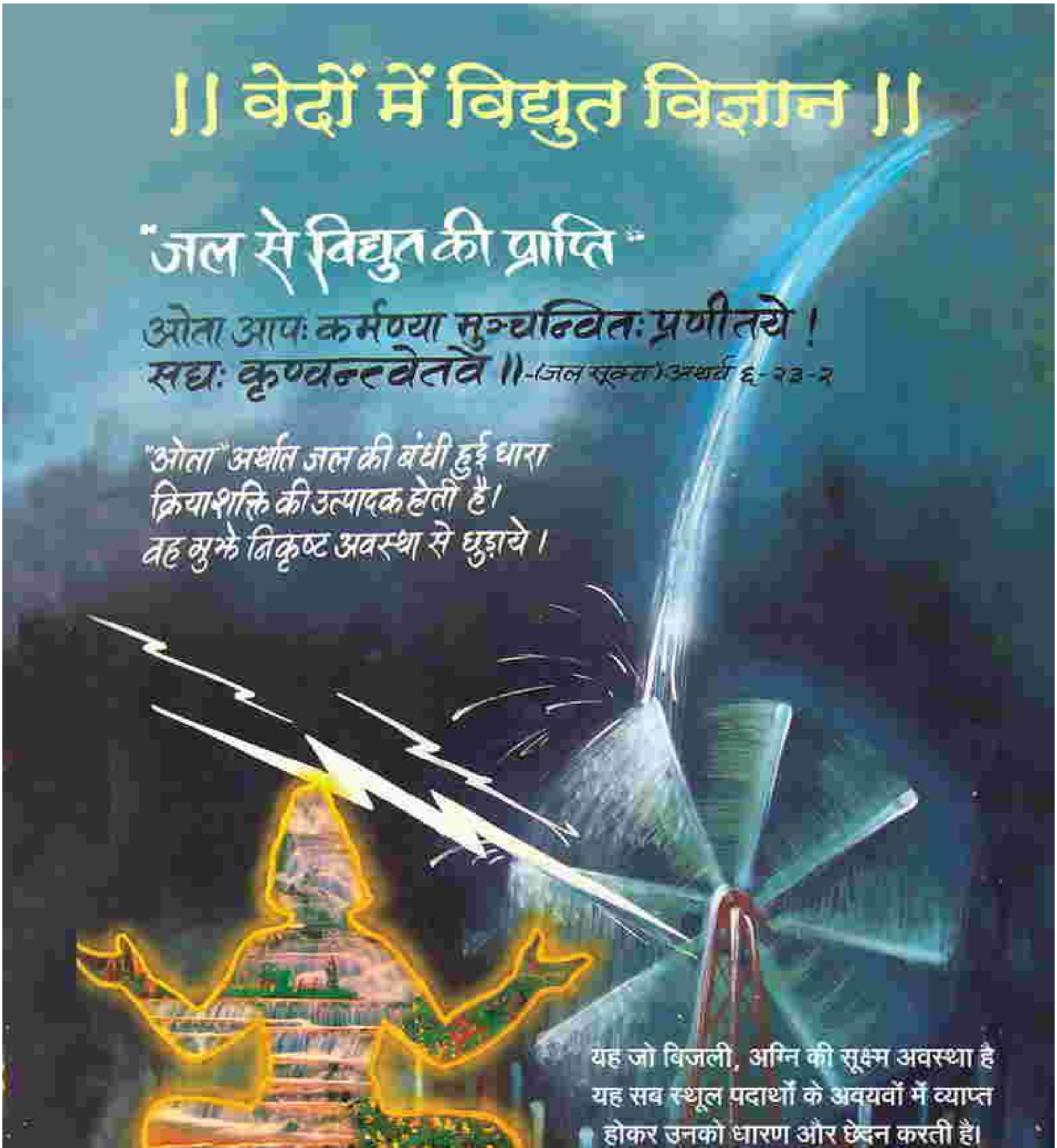

सब पार्थिव द्रव्यों व वायु संबंधी द्रव्यों के घिसने से जो सर्वत्र व्याप्त हुई विद्युत उत्पन्न होती है वह दूर देशों में समाचार आदि पहुंचाने के व्यवहारों को सिद्ध कर सकती हैं। इस विद्युत विद्या से गृहस्थो का बड़ा उपकार होता है।

विभिन्न प्रकार से प्राप्त हुई बिजली का वर्णन वेदों में सूत्र रूप में है। बाद के अगस्त्य संहिता आदि ग्रंथों में इसका विस्तार से विवरण प्राप्त होता है।

।। विभिन्न प्रकार के रथ ।।

विद्युन्मद्भिः स्वर्कैः ऋष्टिमाद्भिः
अश्वपर्णै रथेभिः आयातं । ऋ. 1-88-1

अनवसो अनभिशु विरोदसी पथ्या याति साधनम ॥

ऋ. ३।६६।७

पशुओं की शक्ति से चलने वाले विभिन्न रथों के अलावा वायु, विद्युत तथा सौर उर्जा से संचालित अनेक प्रकार के रथों का वर्णन वेदों में है। ये रथ मरूद्वीर, अश्विनी देवता, ऋभुओं आदि देवताओं द्वारा प्रयोग में लाये जाते थे।

प्रसिद्ध वैदिक विद्वान और चित्रकार पद्म विभूषण पंडित श्रीपाद दामोदर सातवलेकर जी ने वेदमंत्रों की व्याख्या और उनमें वर्णित विशेषताओं के आधार पर कुछ रथों का चित्रांकन अपने ग्रंथों में किया है।

।। वेदों में जलयान परम्परा ।।

आ नो नावा मतीनां यातं पाराय गन्तवे ।
युञ्जाथामश्विना रथम् ॥

"बुद्धिमान पुरुषों द्वारा बनाये गये नाव आदि यानों से समुद्र के पार जाने में सुगमता होती है। वैसे ही वायु तथा अश्वि (अग्नि) विद्युत का योग करके यान बनाओ।"

वेदों में अनेक प्रकार की नौकाओं का उल्लेख है। सागर में सतह पर चलने वाली पनडुब्बी की ओर भी संकेत है। बाद में यही कला विकसित हुई। जिसके प्रमाण इतिहास में मिलते हैं।

जो मनुष्य जल, थल और अंतरिक्ष में चलने वाली मजबूत नावों,
यानों और विमानों को रचते और उनसे देश देशांतरों में जा आकर अपनी इच्छा पूरी करते हैं,
वही सूर्य के समान प्रकाशित कीर्ति वाले होते हैं। (ऋग्वेद 6.58.3 / 1.34.10)

सम्पूर्ण विश्व में भारतीय संस्कृति के विस्तार और विश्वव्यापी व्यापार के प्रमाण मिलते हैं। ये सभी सिद्ध करते हैं कि वैदिक काल से ही भारत जलयान के क्षेत्र में अग्रणी रहा है।

।। वेदों में विमान विद्या के सूत्र ।।

आ! अक्षणज्यावानः वहन्ति। अंतरिक्षेण पततः धातारः स्तुवते वयंः। ऋग्वेद .८.७.३५

..इन वीरों के वाहन बड़े वेगवान तथा शीघ्रगामी होते हैं।
उन पर चढ़कर ये आकाशपथ में विहार करते हैं।

जो भूमि, जल और अंतरिक्ष में चलने के लिए विमान आदि यान बनाये जाते हैं
उनमें पशु नहीं होते, वरन वे पानी और अग्नि के कलायंत्रों से चलते हैं।
मनुष्य को उचित है कि मन के समान वेगयुक्त विमानआदि यानों में जल, वायु और अग्नि को संयुक्त कर,
उनमें बैठकर सर्वत्र भूमंडल में जा-आ कर, शत्रुओं को जीतकर, प्रजा को उत्तम रीति से पालकर,
शिल्प विद्या के कार्यों का विस्तार कर सबका उपकार किया करें।
(ऋग्वेद 1.85. 3-4-5 / 5.59.7 / 8.7.34 / 5.55.2 / 5.54.4 / 1.164.2 / 1.47.2)

दुनियाँ के लिये कुछ दशकों पूर्व तक विमान केवल कल्पना की वस्तु थी।
लेकिन वैदिक सूत्रों में इसे बारे में काफी चर्चा की गई है।
महर्षि भरद्वाज ने इन्ही वैदिक सूत्रों के आधार पर 'विमान शास्त्र' की रचना की।

राइट ब्रदर्स के विमान के आविष्कार के 10 वर्ष पूर्व मुंबई के
एक प्रोफेसर शिवकर बापू तलपदे ने इसी विमान शास्त्र का अध्ययन करके एक विमान मरूत्सखा को
गिरगॉव चौपाटी पर सैंकड़ों लोगों के सामने उड़ाकर दिखाया था।
महादेव गोविन्द रानाडे और सयाजीराव गायकवाड़ इसके प्रत्यक्षदर्शी रहे थे।

हाल ही में इस विषय पर एक 'हवाईजादे' नामक फिल्म का निर्माण हुआ है।

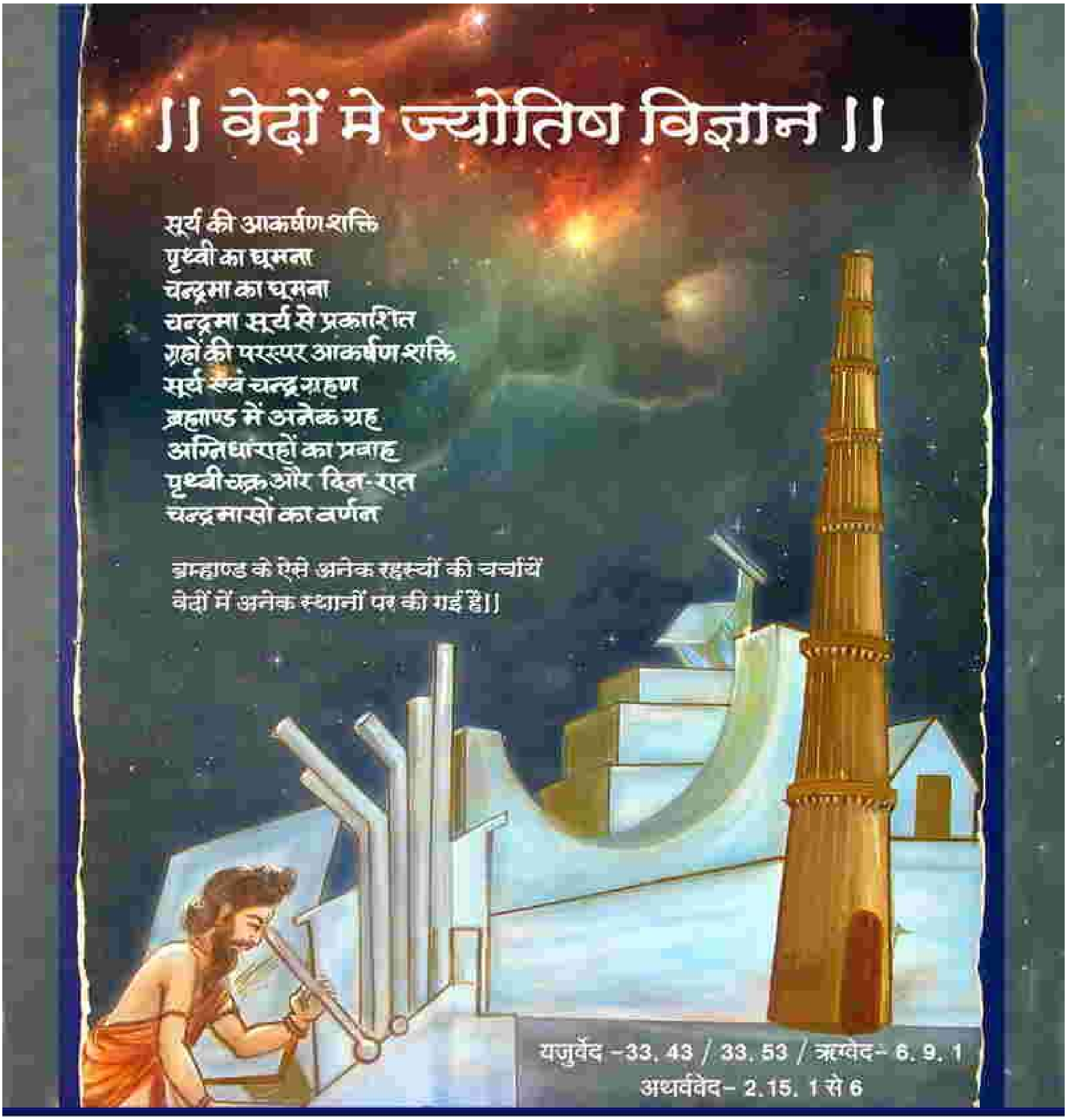

ज्योतिष विद्या को वेदांग के रूप में ऑख की तरह स्वीकार किया गया है।
यज्ञ के लिये उचित एवं शुभाशुभ मुहूर्त, कृषिकार्य के लिये उपयुक्त समय एवं आयुर्वेद के लिये औषधि निर्माण आदि सभी कार्यो में ज्योतिषीय गणनाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है।
वैदिक ऋषियों ने इसीलिये इस महत्वपूर्ण विषय पर कार्य किया। विश्व की सबसे प्राचीन और अचूक कालगणना का प्रमाण भारतीय पंचांग है जिसमें विभिन्न ग्रहों की गति आकार, ग्रहण और उनके प्रभाव का गंभीरता से विश्लेषण लम्बे समय से किया जाता रहा है।

आज के विज्ञान का दंभ भरने वाले पश्चिमी देश जब ब्रूनो को उसकी खगोलीय खोजों को अपने धर्म ग्रंथों के विपरीत मानकर जिंदा जला रहे थे उससे सैंकड़ों वर्ष पूर्व वैदिक ऋषियों ने ज्योतिष विज्ञान को धर्म का अंग मानकर ब्रम्हाण्ड के रहस्यों से पर्दा उठा लिया था।

।। वेदों में कृषि तकनीक ।।

वैदिक काल में कृषि को यज्ञ के समान पवित्र कार्य माना गया है। अथर्ववेद में एक पूरा कृषि सूक्त है जिसमें पर्यावरण की रक्षा करते हुए खेती करने का उल्लेख है।

वेदों में कृषि संबंधी शब्दों के नाम इस प्रकार पाये जाते है।

किनाश (किसान) क्षेत्र (खेत) खनित्र (फावडा) वस्त्र (चाबुक) करिश (गोबर)
खिल (पङ्कतल भूमि) तितउ (छलनी) त्सह (हलका हत्था) दात्र (दतली)
फर्वर (खेत) फाल (हल का लोह फल), लवण (खेती काटना), लांगल (हल)
शकृत (गोबर) सीता (भूमि पर हल की लकीर) सीर (हल), श्रेणी (दतली)
स्टेज (हल का लोहे का फल) तोल (बैलों को हॉकने की लकड़ी)

उल्लेख मिलता है कि एक हल में एक से भी अधिक बैल जोते जाते थे। खेती एकल भी होती थी परन्तु सामूहिक खेती का भी की वर्णन मिलता है। खेतों को माप के आधार पर बॉटा जाता था

अथर्व – कृषि सूक्त 6–50

।। ऋषि और कृषि प्रधान संस्कृति ।।

विश्व में सबसे पहले कृषि द्वारा अन्न उत्पादन का उल्लेख 'ऋग्वेद' में है। वेदकाल में कृषि को एक व्यवसाय नहीं... यज्ञतुल्य पवित्र कर्म माना गया है।

वैदिक मान्यता के अनुसार अश्विन देवता ने सर्वप्रथम बीज बोना सिखाया।
वैदिक और पौराणिक तथ्यों के अनुसार पृथ्वी पर हल से भूमि जोतकर कृषि करने की कला का प्रारम्भ सर्वप्रथम राजा पृथु ने किया था।
राजा पृथु के नाम से ही पृथ्वी का नाम पृथ्वी हुआ।

जमीन को तैयार करने से लेकर फसल प्राप्त करने उसके वितरण और भंडारण तक की सम्पूर्ण व्यवस्था प्राकृतिक थी। फसल उजाड़ने वाले जंगली पशुओं को अपवाद स्वरूप छोड़ दिया जाये तो इस फसल पर विभिन्न पशु पक्षियों और कीटों का भी भाग निश्चित होता था। क्योंकि ये सभी कृषि व्यवस्था में किसी न किसी रूप में सहयोगी होते हैं।

वैदिक युग में भूमि की जुताई के लिए हल महत्वपूर्ण साधन था।
अथर्ववेद में दो से लेकर बारह बैलों वाले हलों से खेती का उल्लेख भी मिलता है।

वैदिक युग में भूमि को उपजाऊ बनाने के लिए करीष यानि गोबर से निर्मित प्राकृतिक खाद के अतिरिक्त यज्ञ से बनी औषधीय खाद का प्रयोग किया जाता था।
कृषि की उत्पत्ति में सहायक वनस्पतियो, अन्न, औषधि, घी, शहद आदि की यज्ञों में जब आहुति दी जाती थी तो धुऐं के रूप में ये सूक्ष्म तत्व वायु में संचरित होकर खाद और सूक्ष्म कीटनाशक का काम भी करते थे।

वर्तमान में कई जगह कृषि में इन प्राकृतिक तरीकों पर कार्य किया जा रहा है.

।। वेद कालीन शल्य चिकित्सा ।।

वैदिक चिकित्सा के आठ अंगों में से दो चिकित्सा विभाग प्रमुख हैं
पहला औषधि द्वारा, दूसरा शल्य क्रिया द्वारा।
शल्यक्रिया व्दारा अनेक चमत्कारिक कार्य किये जाने का
उल्लेख अनेक वेद मंत्रों में है।

ऋग्वेद के मंत्रों में उल्लेखित अश्विनी वैद्यों द्वारा
शल्य चिकित्सा से आंख ठीक करना (1-112-8), हाथ ठीक करना (1-112-8)
अश्व का सिर ऋषि को लगाना (1-116-12), , मस्तिष्क ठीक करना (8-86-2),
वीर योद्धा रानी विष्पला को लोहे की टांग लगाना (1-116-15)
ऐसी अनेक बातों का सूत्र रूप में वर्णन है।

अश्विनीकुमारों द्वारा आविष्कृत इस विद्या को विकसित करके महर्षि सुश्रुत ने संहिता
के रूप में प्रस्तुत किया जो अपने आप में इस विद्या का प्रामाणिक ग्रंथ है।
उसकी प्रामाणिकता के आधार पर महर्षि सुश्रुत को
आधुनिक सर्जरी विद्या का सर्वमान्यजनक माना जाता है।
उनके द्वारा बनाये गये अनेक उपकरण आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में मान्य हैं।

।। सूक्ष्म विषाणुओं का ज्ञान ।।

कुछ दशकों पूर्व तक आधुनिक विज्ञान को सूक्ष्म जीवाणुओं तथा इनसे होने वाले रोगों के बारे में कोई जानकारी नहीं थी। जबकि वैदिक ऋषि को इस प्रकार के अंधेरे, जल, तथा नमी वाले स्थानों में पैदा होने वाले दृष्य-अदृष्य कीटाणुओं के बारे में पता था। सूर्य किरणों, यज्ञ के धुएं तथा अन्य उपायों द्वारा उन्हें मारने के बारे में भी कई मन्त्रों में बताया गया है।

दृष्टमदृष्टमतृहमथो कुरु रुमतृहम।
अल्गण्डून्त्सर्वाछ्लुनान् क्रिमीन वचसा जम्भयामसि।। -अथर्व वेद 2/31/2

दीखनेवाले और न दिखाई देनेवाले इन दोनों प्रकार के क्रिमियों का मैं नाश करता हूँ।
और भूमि पर रेगनें वाले क्रिमिसरें को भी मैं नष्ट करता हूं ! ये विस्तरे आदि में रहनेवाले तथा
वेग से इधर उधर चलनेवाले सब क्रिमियों को वचसा जम्भयामसि वचसा के द्वारा हटाता हूँ।

अल्पण्ड्न हन्मि महता वधेन दूना अदूना अरसा अभूवन्।
शिष्टानशिष्टन् नि तिरामि वाचा यथा क्रिमीणां नकिरुच्छिष्यातै।। -अथर्व वेद 2/31/3

विविध स्थानों में रहने वाले क्रिमियों को बड़े आघात से मैं मारता हूं ! चलनेवाले और न चलनेवाले
सब कृमी रसहीन हो गये। बचे हुए और न बचे हुए भी सब क्रिमीयों को वचा से मैं नाश करता हूँ।

ये क्रिमय: पर्वतेषु वनेएवोषधीषु पशुएवप्स्ववन्त:।
ये अस्माकं तन्व माविविशु: सर्वं तद्वन्मि जनिम क्रिमीणाम्।। -अथर्व 2/31/5

जो पहाड़ियों पर क्रिमी होते है, वन औषधि, पशु जल आदि में होते है।
और जो हमारे शरीर में प्रविष्ट हुए है। उन क्रिमियों का सम्पूर्ण जन्म मैं नष्ट करता है।

अथर्व वेद के पॉचवे अध्याय के तेवीसवें सूक्त में भी इनका विस्तार से वर्णन है।

शरीर में रोग का कारण या तो शरीर में वात, पित्त, कफ आदि आंतरिक द्रव्यों का असंतुलन होता है या सूक्ष्म कृमियों जैसे बाहरी तत्वों का शरीर में प्रवेश। इसीलिये वैदिक ऋषियों ने खान-पान और औषधियों के साथ-साथ व्यक्ति के उचित रहन सहन के लिये भी वास्तु आदि का निर्देश किया है ताकि उसे शुद्ध अन्न, जल, वायु, के साथ सूर्य-चन्द्र आदि के संसर्ग का लाभ भी मिल सके।

सूक्ष्म विषाणुओं या वायरसों से उत्पन्न महामारियॉ मनुष्य की स्वैच्छाचारी जीवन शैली और प्रकृति से छेड़छाड़ का परिणाम होती है। जैसा कि हाल ही में कोविड महामारी के रूप में दुनियॉ ने महसूस किया है। इसीलिये वेदों में संतुलित जीवन शैली और प्रकृति से तालमेल बैठाने के लिये आग्रह विभिन्न मंत्रों में किया है।

।। वेदों में संगीत विद्या ।।

ऋचाओं के सस्वर गान का पूरा उल्लेख सामवेद में है।
सामवेद के गान की एक सहस्त्र पध्दतियाँ प्रचलित थी।

देवस्तुति और लौकिक मनोरंजनार्थ
वंशी, शंख, दुंदुभी, अघाति (मंजीरे),
कर्करी (सितार), वीणा (शततंत्री)
और अनेक स्वर, तार, ताल वाद्यों का
उल्लेख वेदों में आया है।

सामवेद से संगीत की उत्पति मानी जाती है। वैदिक ऋषियों ने वेदों पर अनुसंधान से सात स्वर खोजे और उन्हें मंत्रो के गायन के लिए प्रयुक्त किया और तय किया कि इस स्वर में इस छंद का गायन करना चाहिए। इसी कारण वेद मंत्रो में देवता, ऋषि और छंद के साथ षड्ज, निषाद, गांधार धैवत आदि स्वर भी उल्लेखित है जिन्हें संक्षेप में सा, रे, ग, म, प, ध, नि के रूप में कहा जाता है। वेदोत्तर काल में अनेक आचार्यो द्वारा इस विधा का शास्त्रीय संगीत के नाम से बहुत विकास हुआ।

वैदिक संगीत मनोरंजक होते हुए भी केवल मनोरंजन के लिये नहीं था।
इसका मूल ध्येय परमात्मा की स्तुति रहा है।
इन सबके अलावा संगीत का उद्देश्य शारीरिक और मानसिक कल्याण भी रहा।
वर्तमान में संगीत चिकित्सा एक स्वतंत्र उपचार थैरेपी के रूप में लोकप्रिय हो रही है।

॥ राष्ट्र रक्षा हेतु विविध आयुध ॥

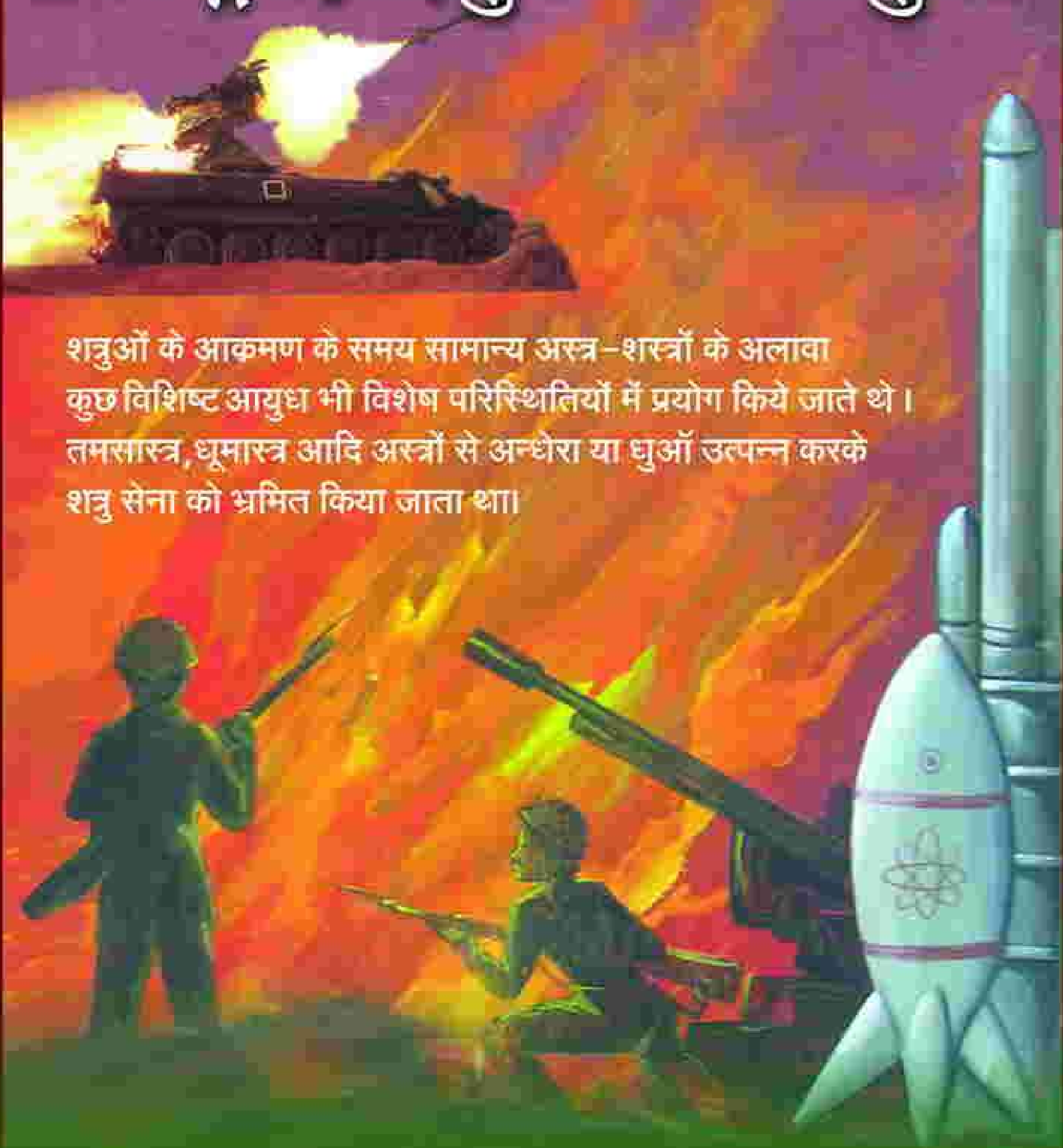

शत्रुओं के आक्रमण के समय सामान्य अस्त्र–शस्त्रों के अलावा कुछ विशिष्ट आयुध भी विशेष परिस्थितियों में प्रयोग किये जाते थे। तमसास्त्र, धूमास्त्र आदि अस्त्रों से अन्धेरा या धुआँ उत्पन्न करके शत्रु सेना को भ्रमित किया जाता था।

युध्द के इन अस्त्रों के अलावा विशेष प्रकार के रथ आदि का प्रयोग किया जाता था। सीसे की गोली का उल्लेख भी वेदों में हैं। 'विषान्धि' नामक एक महाअस्त्र की चर्चा भी वेदों में है। इनमें से कुछ प्रकार के अस्त्रों का अंदाजा हम विभिन्न प्रकार की मिसाइलों और बमों को देखकर लगा सकते हैं।

रामायण और महाभारत में इस कला का चरम देखाने को मिलता है।

अथर्ववेद 5, 18, 81/ 2–2–6 । 1–1–16 से21 / ऋग्वेद 6 . 75 –1 से 19

वैदिक युग में व्यापार विश्वव्यापी था।

" ये पन्थानो वहवो देवयाना अन्तरा द्यावा पृथिवी संचरन्ति।
ते मा जुषन्ताम् पयसा घृतेन यथा क्रीत्वा धन माहराणि।। "

भूमि, जल तथा आकाश मार्गों से दूर-दूर जाकर क्रय-विक्रय द्वारा धन कमाने की प्रार्थना, निर्देश आदि का उल्लेख वेद के अनेक मंत्रों में है।

वेदों में ऐसे अनेक प्रकार के वाहनों का उल्लेख है जिनके द्वारा जल, थल और नभ तीनों जगह विचरण किया जा सकता है। ये वाहन मरूतवीरों, सेनाओं, अश्विनीकुमारों द्वारा चिकित्सा पथक के रूप में उपयोग में लाये जाने का वर्णन है। ऐसे ही वाहनों का उपयोग व्यापारिक कार्यों में भी किया जाता रहा है।

(ऋग्वेद 1.85. 3-4-5)

भारत की नेवी का ध्येय वाक्य 'शं नो वरूण:' है।
वैदिक काल से ही भारत जलयान निर्माण और उनके उपयोग में अग्रणी रहा है।
इन्ही जलयानों द्वारा व्यापार करके भारत विश्व का समृद्ध स्वर्णमयी देश बना था।

।। शास्त्रार्थ की परम्परा ।।

वैदिक ग्रंथों के अध्ययन से पता चलता है कि ब्रह्म या जगत संबंधी विषयों पर विद्वानों में शास्त्रार्थ की परम्परा थी। यज्ञ आदि अवसरों पर इस प्रकार के शास्त्रार्थ के आयोजन होते थे। ये चर्चायें द्वेष या हठ धर्मिता से परे सत्य की खोज के लिये की जाती थी। इन चर्चाओं में केवल विद्वान ही नहीं राजा-महाराजा और सामान्य जन भी भाग लेते थे। अनेक महिलाओं द्वारा भी इनमें भाग लेने के उल्लेख वैदिक साहित्य में हैं।

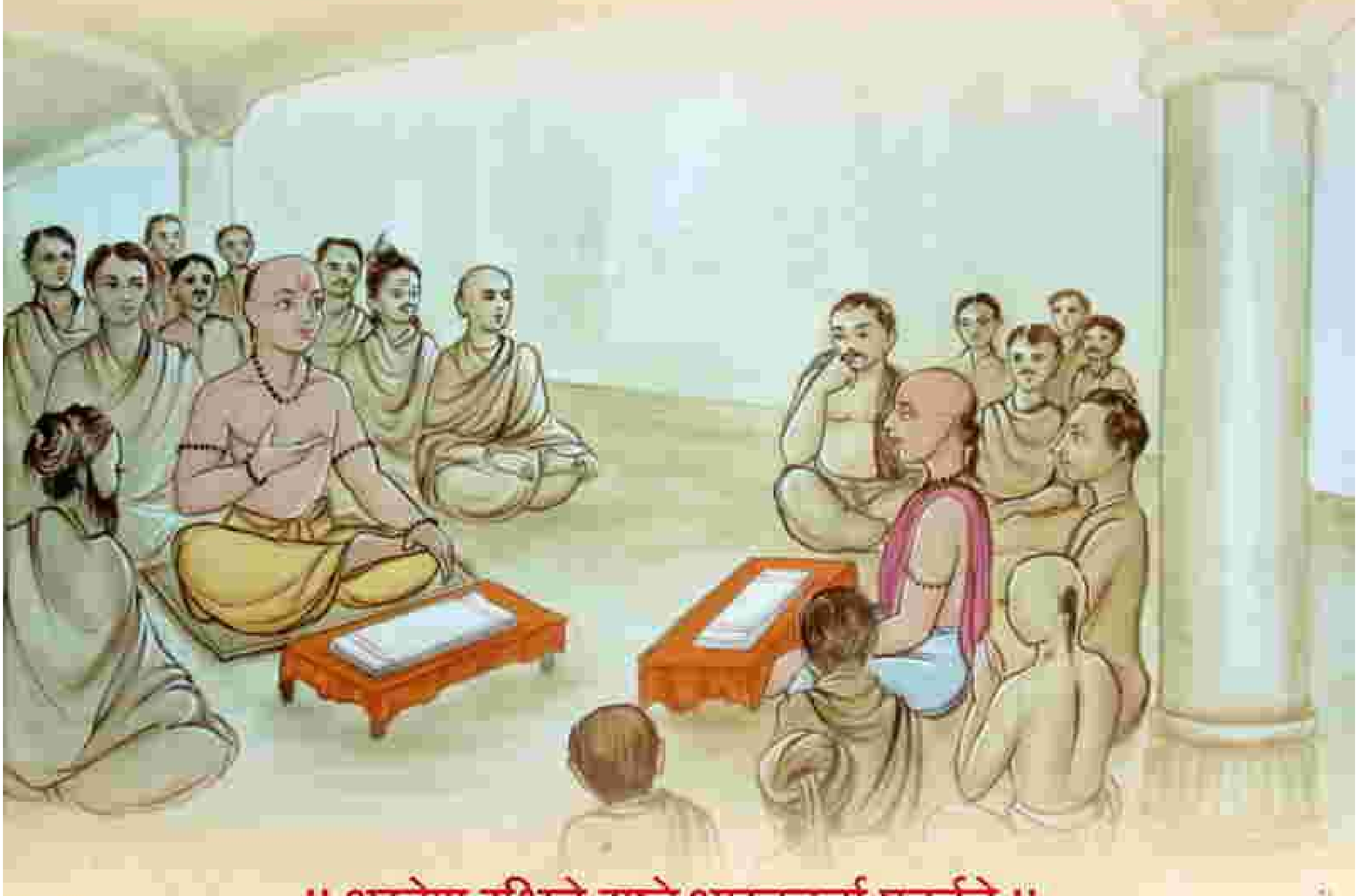

।। शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्रचर्चा प्रवर्तते ।।

कालान्तर में शास्त्रार्थ से निष्कर्ष पर पहुँचने की प्रवृति वाले पंडितों का पाला जब बर्बर इस्लामिक आक्रान्ताओं से पड़ा तो वे समझ भी नहीं पाये कि इनसे शास्त्रार्थ की बात करना बेमानी है।

पंडितों ने शास्त्रीय तर्कों और राजा महाराजाओं ने धर्म युद्ध की नीति लेकर इनसे मुकाबला करने का प्रयास किया। फलत: क्या मिला? धोखा, लूट, आगजनी, बालात्कार, अपहरण और जबरन धर्मपरिवर्तन, मंदिरों का विध्वंस आदि आदि

अनेक विद्वान प्रवचनकारों द्वारा वर्तमान में भी यह नासमझी जारी है। वे सर्वधर्म समभाव की रट लगााकर हिन्दुओं को अभी भी समझाने का प्रयास कर रहे हैं कि सभी ग्रंथों में एक ही बात लिखी हुई है। महात्मा गाँधी से लेकर आज तक ऐसे बापुओं की एक लंबी श्रृंखला है जो हिन्दुओं को अहिंसा के नाम पर कायरता का उपदेश देते आ रहे है।

।। शास्त्रों की रक्षा शस्त्र से ही संभव है ।।

हिंदू एवं अन्य संस्कृतियों में सबसे बड़ा अंतर यह है कि वह ईश्वर की प्राप्ति किसी नाम या उसे पाने की किसी विशेष विधि पर ही निर्भर नहीं है।
इसलिए हिंदुओं ने अन्य धर्मों के लोगों को हिंदू धर्म में परिवर्तित करने का प्रयास नहीं किया।

वैचारिक स्वतंत्रता की यह भावना
पहले हिंदू धर्म की सबसे बड़ी ताकत थी
लेकिन कट्टर अब्राह्मिक मजहबों के उदय के बाद
यह शक्ति ही इसकी सबसे बड़ी कमजोरी बन गई।

इसीलिये हिन्दू धर्म अपनी तार्किकता और आध्यात्मिकता के दम पर विश्व के अनेक देशों में फैला। परन्तु बाद के कालखंड में केवल आध्यात्म को ही सर्वस्व और जगत को दुःख का कारण मानने वाले विचार हावी हुए और समाज की शक्ति क्षीण होती चली गई तथा हिन्दू सिमटते हुए भारत में भी असुरक्षित होने की कगार पर पहुंच गये।

आइये, हम वैदिक विचारों का अनुसरण करते हुए भौतिक और आध्यात्मिक दोनों दृष्टि से शक्ति सम्पन्न होने का संकल्प लें।

।। हिन्दू ग्रंथो का बर्बर विनाश ।।

हिंदू ग्रंथ केवल मानवता के लिए वरन सार्वभौमिक कल्याण के निमित्त रचे गये थे। सदियों से दुनिया भर के कई विद्वान भारतीय विश्वविद्यालयों और गुरुकुलों में इनके अध्ययन के लिये आते रहे।
लेकिन दुर्भाग्य से अब्राहमिक कट्टरतावादी मुस्लिम और ईसाईयत जैसी एकेश्वरवादी संस्कृतियाँ अस्तित्व में आईं जो और किसी भी अन्य धार्मिक विचार और दर्शन के अस्तित्व का स्वीकार ही नहीं करती थी। अपने धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मावलम्बियों के खिलाफ उनका रवैया बर्बर और शत्रुतापूर्ण था।

उन्होंने धर्म को राजनीति से जोड़कर दुनियाँ भर के पंथों के विरुद्ध बर्बर युद्ध प्रारंभ कर दिया। सभी संस्कृतियों को अपने जैसा मानने वाले हिन्दू शासक इस नीति को समझे बिना धर्मयुद्ध के नियमों का पालन करते रहे और निरंतर पराजित होते रहे।

मुस्लिम आक्रमणों के दौरान, मंदिरों के विनाश, नरसंहार और पुस्तकालयों में आग लगाने का सिलसिला लंबे समय तक चलता रहा। गुरुकुलों, मंदिरों तथा विश्वविद्यालयों के खंडहर इस बात के प्रमाण हैं कि विश्व को ज्ञान से आलोकित करने वाले विश्वविद्यालय और विद्वान किस तरह इस्लामी क्रूरता के शिकार हुए।

ईसाई मिशनरीज द्वारा अनुवाद के नाम पर
वैदिक ग्रंथों के विरूद्ध षडयंत्र

भारतीय ग्रंथों के साथ मुस्लिम बर्बरता के बाद ब्रिटिश शासन काल में शोध और अनुवाद की आड़ में ईसाई मिशनरियों ने बड़े पैमाने पर वेदों तथा अन्य हिन्दू ग्रन्थों को विकृत करने का प्रयास किया। इस कार्य में अनेक विदेशी विद्वानों को लगाया गया था।

शिक्षा का माध्यम संस्कृत के स्थान पर अंग्रेजी, इतिहास के नाम पर आक्रान्ताओं का गुणगान तथा भारतीय शासकों का चरित्र हनन और अनुवाद के नाम पर वेदों को गडरियों के गीत के रूप में प्रचारित करना।

इसके परिणामस्वरूप अगली पीढ़ी के बालक इन विकृत ग्रंथों और इतिहास को पढ़कर बड़े हुए, उनमें देश की संस्कृति और हिन्दू ग्रंथों में आस्था के प्रति कोई प्रेम नहीं रहा।

इन ग्रंथों को विकृत करने में मैक्स मुलर, लॉर्ड मेकाले, मैकडोनाल्ड्स, जेम्स मिल, मोनियर विलियम्स, विल्सन, कीथ आदि विदेशी विद्वानों का बड़ा हाथ रहा। और वेदों की व्याख्या और अनुवाद इस प्रकार किया गया था कि इन वैदिक ग्रंथों के प्रति लोगों की अरूचि हो गई।

इन तथाकथित विद्वानों के पत्र, जो अभिलेखागार में संग्रहीत हैं, इस षड्यंत्र की गवाही के लिए पर्याप्त हैं।

ब्रिटिश राज्य में वेद आदि हिन्दू ग्रन्थों का विकृतीकरण अनुवाद के नाम पर एक षडयंत्र के तहत किया गया। देश-विदेश के अभिलेखों में तत्कालीन ब्रिटिश अधिकारियों तथा मैक्स मूलर द्वारा लिखे गये पत्र इस षडयन्त्र की गवाही दे रहे हैं।

Macaulay said,

"We must form a class of persons who may be interpreters between us and the millions whom we govern, a class of persons, Indian in blood and color but English in taste, in opinion, in mind and in intellect."

To the Dean of St. Paul's (Dr. Milman), Staunton House Bournemouth, February 26, 1867, he wrote:

"I have myself the strongest belief in the growth of Christianity in India. There is no country so ripe for Christianity as India, and yet the difficulties seem enormous."

(source: The True History and the Religion of India: a Concise Encyclopedia of Authentic Hinduism - by Swami Prakashanand Saraswati (p. 268 - 270). For more on Max Muller refer to chapter Pseudosecularists and Aryan Invasion Theory)

Max Muller's friend E.B. Pusey in 1860 wrote to him,

"Your work will form a new era in the efforts of the conversion of India and Oxford will have reason to be thankful that, by giving you a home, it will have facilitated a work of such primary and lasting importance for the conversion of India and which, by enabling us to compare that false religion with the true, illustrates the more than blessedness of what we enjoy."

(Cradle of Civilization page 10)

To Chevalier Bunsen, 55 St. John Street, Oxford, August 25, 1856, he wrote:

"I should like to live for 10 years quite quietly and learn the language, try to make friends, and then see whether I was fit to take part in a work, by means of which the old mischief of Indian priestcraft could be overthrown and the way opened for the entrance of simple Christian teaching. Whatever finds root in India soon overshadows the whole of Asia"

As Max Mueller, the propagator of the Aryan invasion theory, wrote to his wife,

"It took only 200 years for us to Christianise the whole of Africa, but even after 400 years India eludes us. I have come to realise that it is Sanskrit which has enabled India to do so. And to break it I have decided to learn Sanskrit." The soul of India lies in Sanskrit. And Lord Macaulay saw to it that the later generations are successfully cut off from their roots.

(source: assaulting India's pluralist ethos by ...)

TO THE DUKE OF ARGYLL, OXFORD, December 16, 1868.

"India has been conquered once, but India must be conquered again, and that second conquest should be a conquest by education. Much has been done for education of late, but if the funds were tripled and quadrupled, that would hardly be enough... A new national literature may spring up, impregnated with western ideas, yet retaining its native spirit and character... A new national literature will bring with it a new national life, and new moral vigour. As to religion, that will take care of itself. The missionaries have done far more than they themselves seem to be aware of." "The ancient religion of India is doomed, and if Christianity does not step in, whose fault will it be?"

TO CHEVALIER BUNSEN, 55 ST. JOHN STREET, OXFORD, August 25, 1856.

"India is much riper for Christianity than Rome or Greece were at the time of St. Paul. The rotten tree has for some time had artificial supports... For the good of this struggle I should like to lay down my life, or at least to lend my hand to bring about this struggle. Dhulip Singh is much at Court, and is evidently destined to play a political part in India."

TO HIS WIFE, OXFORD, December 9, 1867.

"...I feel convinced, though I shall not live to see it, that this edition of mine and the translation of the Veda will hereafter tell to a great extent on the fate of India, and on the growth of millions of souls in that country. It is the root of their religion, and to show them what that root is, I feel sure, the only way of uprooting all that has sprung from it during the last 3,000 years."

लेकिन यह दुर्भाग्यपूर्ण था कि आजादी के बाद महात्मा गाँधी की दया से पंडित नेहरू लोग भारत के प्रधानमंत्री बन गये, जो खुद के हिंदू होने में शर्म महसूस करते थे। फलस्वरूप अंग्रेजों द्वारा बनाई गई शिक्षा व्यवस्था उसी विकृत रूप में चलती रहीं।

आजाद भारत की शिक्षा व्यवस्था षडयंत्र के तहत हिंदू विरोधी कम्युनिस्ट मानसिकता के लोगों के हाथों चली गई। शिक्षा और फिल्म जगत में हिंदू परंपराओं और मान्यताओं का उपहास उड़ाने का जो क्रम शुरू हुआ वो अभी तक जारी है।

।। हिन्दू ज्ञान परम्परा का ह्रास ।।

यह दुखद है कि अधिकांश मूल्यवान प्राचीन साहित्य या तो लुप्त हो गए हैं या नष्ट हो गए हैं। इसका कारण शायद यह है कि वे भोज पत्र (पेड़ की छाल) पर लिखे गए थे, इसलिए उन्हें सहेजा नहीं जा सका और समय के साथ धीरे-धीरे विघटित हो गए। मुस्लिम आक्रमणकारियों ने भी शैक्षिक केंद्रों और पुस्तकालयों को बेरहमी से नष्ट कर दिया। इसके बावजूद, कुछ प्राचीन पाठ और पांडुलिपियों की खोज करके इसे आंशिक रूप से संरक्षित किया गया है।

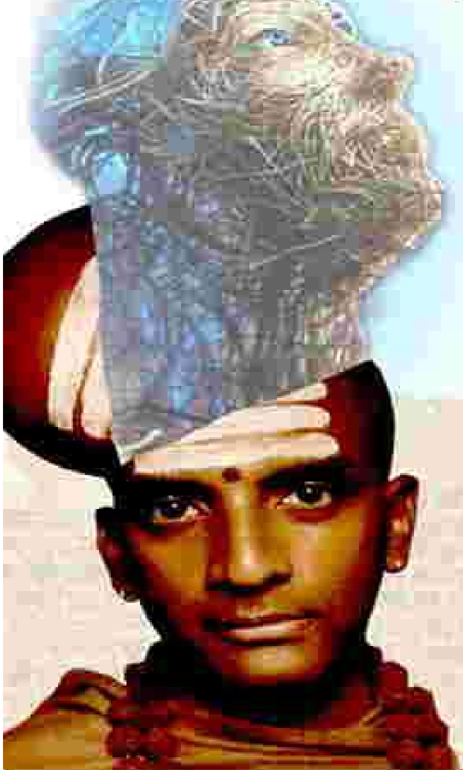

हिंदू ग्रंथों में से वेद लंबे समय तक जीवित रहे क्योंकि वे पीढ़ियों से मौखिक रूप से अवतरित हुए थे। हालांकि इनकी कई शाखाएं विलुप्त हो चुकी हैं।

पौराणिक ग्रन्थों ने भी अपनी रोचकता के कारण वाचन और श्रवण की परम्परा को कायम रखा है, जो आज तक उनके अस्तित्व को जीवित रखे हुए है।

भारतीय साहित्य के नष्ट होने के कई कारणों में सबसे महत्वपूर्ण है वर्तमान जीवन शैली के चलते ब्राम्हण समाजका अंतर्द्वन्द।

आधुनिक समाज में धर्म के प्रति उदासीनता और ब्राह्मणों में भी भौतिक साधनों के प्रति आकर्षण तथा पौरोहित्य पेशे के प्रति घटते सम्मान ने उन्हे इस ज्ञान परम्परा से दूर कर दिया है। नई शिक्षा नीति के चलते जो ग्रंथ आभूषण थे वे बोझ लगने लगे।

वानप्रस्थ व्यवस्था धर्म का आधार थी इसके कमजोर होते ही धर्म कमजोर हुआ।

विज्ञान की इन शाखाओं का व्यावसायिक लाभ कभी भी जुड़ा नहीं था, ये विशेष रूप से समाज सेवा के लिए थीं। परंपरागत रूप से यह ज्ञान गुरु-शिष्य परंपरा में गुरु द्वारा शिष्यों को दिया जाता था। वानप्रस्थ कहे जाने वाले ५० से ७५ वर्ष की आयु के लोग विज्ञान के इन विषयों के अनुसंधान और विकास में निःस्वार्थ रूप से समाज के लिए समर्पित रहते थे।

ब्रिटिश शासन के दौरान और बाद में पश्चिमी जीवनशैली ने हिंदू समाज को अपने कब्जे में ले लिया। भौतिकतावाद और उपभोक्तावाद आधारित मानसिकता ने संपूर्ण मानव जीवन को कमाई और उपभोग तक सीमित कर दिया, फलस्वरूप वानप्रस्थ की परंपरा भी लुप्त हो गई और इसके समाप्त होने के साथ ही उस पर आधारित शैक्षिक केंद्र, गुरुकुल, चिकित्सा पद्धतियां, वैज्ञानिक खोजें और शोध अपने आप समाप्त हो गए।

जैसे-जैसे शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी में बदलता गया, इसके आर्थिक और सामाजिक लाभों ने संस्कृत भाषा को किनारे कर दिया।

इसके बाद प्रत्येक भारतीय घर में संरक्षित संस्कृत ग्रंथों ने अपना महत्व स्वयं ही खो दिया।

लंबे समय तक संरक्षित, सदियों पुराने ग्रंथ, संरक्षण के अभाव में या तो नष्ट हो गए या रद्दी बनकर घरों से बाहर चले गए। फिर भी जो कुछ बचा है वह हिन्दू साहित्य की विशालता और भव्यता की झलक देने के लिए पर्याप्त है।

आचरण रहित ज्ञान मात्र बोझ है

विश्व में जब भी कोई महान उपलब्धि सामने आती है
तब हम उसे वेदों में ढूंढकर अपना बताने का
प्रयास करते है।

पर विचारणीय है
वेदों के होते हुए
भी हम हिन्दू
इस दुरावस्था को
क्यों प्राप्त हो गये

?

'वेद हमारी अमूल्य सम्पत्ति है'
यह सत्य है परन्तु केवल कहने से काम नहीं चलेगा।
हमें स्वयं इस दिव्य ज्ञान के भंडार को जान-समझकर उसके अनुरूप
आचरण करते हुए स्वयं और देश को महान बनाना होगा।
अन्यथा इसे व्यर्थ का प्रलाप ही माना जायेगा।

ॐ

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

शान्तिः
शान्तिः
शान्तिः

वेद ईश्वर के विषय में दुराग्रह रहित होकर नैति-नैति कहते हैं।
वेद के बारे में विनम्र भाव से यही कहना चाहेंगे नैति-नैति
हमने सिर्फ झलक दिखाई है. वेद भगवान को जानने हेतु
आप भी इस अनंत आनंद यात्रा के पथिक बनें।

...इति शुभम्.

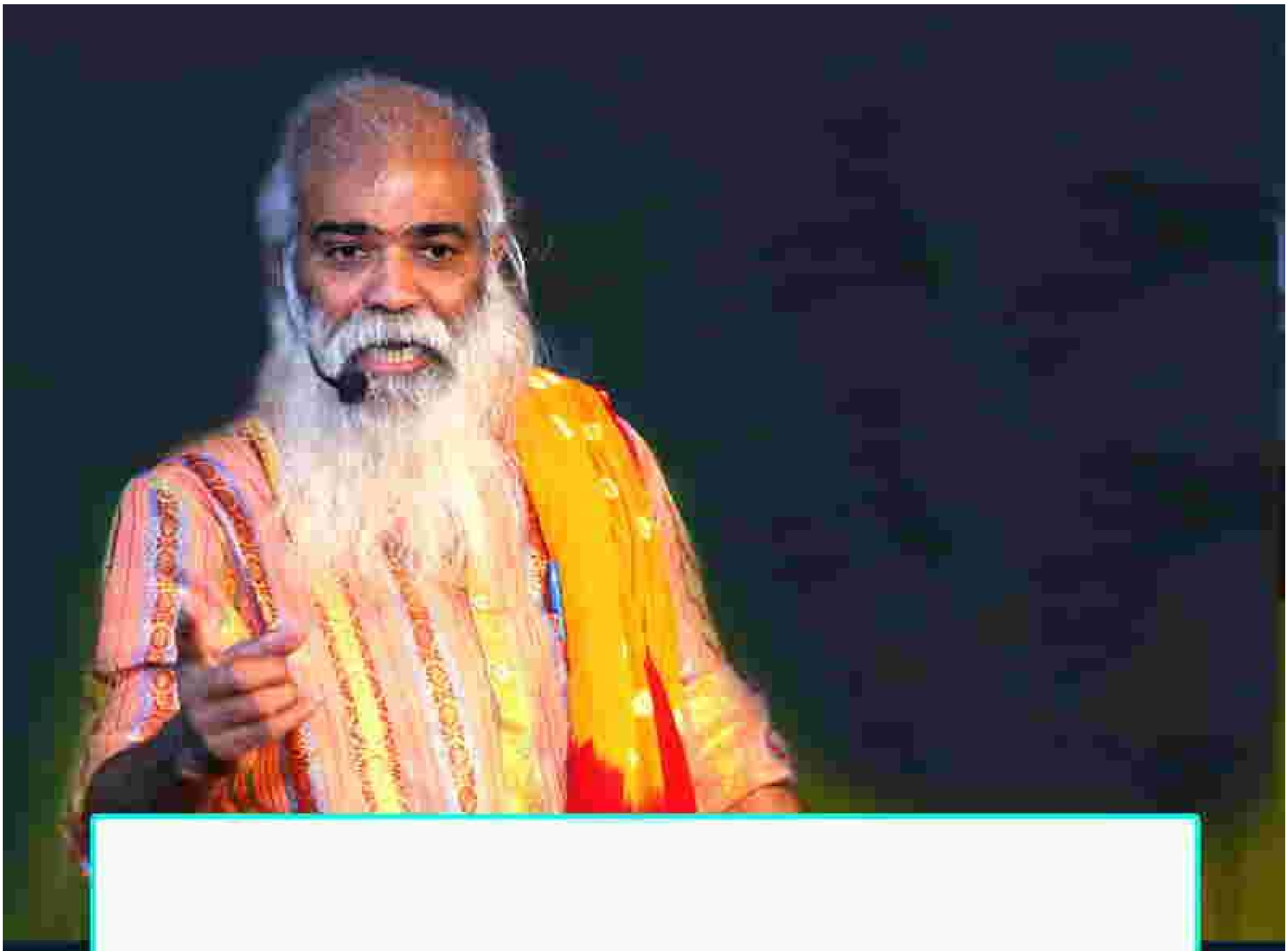

भारतभक्ति संस्थान

शीव कल्याण केन्द्र, मुंबई